श्री आदिनाथाय नम

स्व० शान्तस्वभाविनी श्रीमती पवित्रश्रीजी महाराज साहेब के स्मरणार्थम्—

कवीन्द्र–काव्य–केलि

[चैत्यवदन, स्तोत्र, स्तुति, स्तवन, सज्झायादि का संग्रह]

रचयिता

पूज्यपाद कविकुलकिरीट आचार्यदेव

श्रीमज्जिनकवीन्द्रसागरसूरीश्वरजी महाराज साहेब.

द्रव्य सहायक

नरगच्छनभोमणि स्व पूज्य गणाधीश्वर श्रीमान् सुखसागरजी म सा के समुदाय के वर्तमान गणाधीश पू श्री उदयसागरजी म सा. तथा प्रज्ञापुरुष अनुयोगाचार्य श्री कान्तिसागरजी म सा. की आज्ञानुवर्त्तिनी श्री पुण्यश्रीजी म सा की शिष्या स्व श्री पवित्रश्रीजी म सा की अन्तेवासिनी श्री दिव्यप्रभाश्रीजी तथा श्री विशालप्रभाश्रीजी म के सदुपदेशसे —

श्राविका संघ

वि सं २०२७ | प्रत १००० | कवीन्द्र सं १९
वीर सं २४९७ | मूल्य. पठन-पाठन | प्रथमावृत्ति

हमारे प्रकाशन

१ जिन गुरुगुण सचित्र पुष्पमाला
२ पैंतीस बोल विवरण
३ अंजना चरित्र
४ सती मयणरेहा
५ पौषधविधि
६ प्रतिमा बहार
७ जिन गुरुगुण पुष्पमाला
८ जैनाचार्य प्रतिबोधित गोत्र एवं जातियां
९ क्षमाकल्याणचरित्रम्
१० चमकती दिव्य ज्योतियां
११ पुनीत आत्मा
१२ मीठा संभारणा
१३ प्यारा खरतर चमक गया
१४ दादा चित्र संपुट (सचित्र)
१५ कवीन्द्र काव्य केलि

: प्रकाशक :

श्री जिन हरिसागरसूरि ज्ञान भंडार
जिन हरिविहार
पालीताणा ३६४२७०

■

: मुद्रक :

बालाशंकर काशीराम त्रिवेदी
हरिहर प्रि. प्रेस
२९, सर्वोदय सोसायटी—पालीताणा

सादर समपर्ण

परम शान्तमूर्ति ! मम जीवनपथ प्रदर्शिका ! गुरुवर्य्या !

स्व. श्रीमती पवित्रश्रीजी म. सा.

सहज सुभाव सुनिर्मल उज्ज्वल,
जीवन पवित्र गंगा सी धारा ।
हे गुरुवर्य्या ! तुज चरण-कमल में,
कोटि-कोटि हो नमन हमारा ॥

अनहद उपकारों से घनी कृतज्ञा,
मैं हूं तुज चरनन चेरी ।
करकमलों में करती समर्पण,
पुस्तिका लो यह अरजी मेरी ॥

'भवदीया' पदकजमधुकरी
दिव्यप्रभाश्री (मर्गाजिनी)

पू. आचार्यदेव-श्रीमज्जिन-कवीन्द्रसूरि—

गुणस्तुतिः

प्रह्लादनपुरे जातो, धनपतेति नामकः ।
न्यालचंद्रकुलोत्तंसो, वब्बुबाईसुपुत्रकः ॥ १ ॥

शैशवे तीव्रतेजस्को, महाबुद्धिनिधानकः ।
हर्षब्धिगुरुपार्श्वे यो, गृहीतधर्मसञ्चयः ॥ २ ॥

द्वादशाब्दे प्रतिपन्नो, दीक्षां हर्षब्धिपाणिना ।
कवीन्द्रसागरनाम्ना, ख्यातः श्रीसङ्घमण्डले ॥ ३ ॥

व्याकरणादिग्रन्थानां, पारगः स्वल्पकालके ।
विहर्त्ता गुरुणा सार्धं, वंगभूम्यादिषु च यः ॥ ४ ॥

उपाध्यायपदं प्राप्तो, गुरुतो मेड़तापुरे ।
कवित्वलब्धिसम्पन्नः, तपस्वी सौम्यमूर्तिकः ॥ ५ ॥

सिद्धान्तपालने दक्षो, देशनायां बृहस्पतिः ।
कल्याणकैलासाब्ध्यादि-प्रभूतपरिवारकः ॥ ६ ॥

राजनगरसंघेन, दत्तं सूरिपदं वरम् ।
समुदायाधीशो जातः, सुमहोत्सवपूर्वकम् ॥ ७ ॥

मन्दसोरपुरासन्ने, "बुढ़ा" नामेति ग्रामके ।
दिवंगतो गुरुर्दिव्यां, करोतु शासनोन्नतिम् ॥ ८ ॥

सत्सेव्यो श्री कवीन्द्रसागरसूरिर्वन्दे कवीन्द्रं गुरुम् ।
सद्धर्मेषु कवीन्द्रकेन जनता संयोजिताऽस्मै नमः ।
प्रज्ञश्रेष्ठकवीन्द्रकाय सुगमं शास्त्रं कवीन्द्राद् गुरोः,
भूयान्मे सुकवीन्द्रस्य कस्य शरणं. भक्तिः कवीन्द्रे सदा ॥९॥

द्रव्य-दाताओं की नामावलि

१०००) ताराचंदभाई की धर्मपत्नी
अ सौ श्री रेखाबेन बम्बई

२०००) पुखराजजी भंसाली की धर्मपत्नी
अ. सौ श्री किरणबाई मद्रास

५००) सहसमलजी लोढ़ा की धर्मपत्नी
अ सौ श्री नीमीबाई पंडरिया

२५०) श्री अ सौ अरुणाबेन बम्बई

२२५) सिरेमलजी गिड़िया की धर्मपत्नी
अ सौ श्री लाजवतीबाई त्रिची

२०१) नेमीचन्दजी लुणावत की धर्मपत्नी
श्री बालुबाई कुनूर

१५१) अ सौ श्री दिवालीबेन बड़ौदा

१००) अ सौ श्री देवीबाई छाजेड़ बड़ौदा

१००) महेन्द्रचन्दजी सेठिया की धर्मपत्नी
अ सौ श्री कान्ताबाई मद्रास

१००) कानीबाई मद्रास

१००) पृथ्वीराजजी डाकलिया की धर्मपत्नि
अ सौ. श्री चम्पाबाई पडरिया

१००) बभूतमलजी पारख की धर्मपत्नी
श्री अणचीबाई मद्रास

११००) खापर ज्ञान खातेमें से

२००) फकीरचन्द गोलेच्छा की धर्मपत्नी
अ सौ पतासीबाई बड़ौदा

[आमुख]

इस चराचर संसार में सभी मानव संगीतप्रिय है. मानव ही नहीं, अपितु पशु-पक्षी भी संगीत को सुनकर स्तम्भित से वन जाते हैं ! इस युग में जहाँ-तहाँ देखो सिने-गितों को गुन-गुन करते ही रहते हैं, वालक, युवा, वृद्ध, प्रायः मनोरंजन के लिये संगीत को श्रेष्ठ समझते हैं, तथा अपनाते हैं. आज का ही प्रवाह है, वैसा नहीं, किन्तु प्रथम से ही यह प्रवाह वहता हुआ आ रहा है ।

भक्ति-योग, कर्म-योग. एवं ज्ञान-योग इन तीनों की साधना से साधक सिद्धि को हाँसिल करता है इन में प्रथम सोपान भक्ति का ही हैं. भक्ति की साधना में संगीत एक परम साधन है, इस को अपनाकर आत्मा परमात्म-तत्त्व में लीन वन जाता है लंकाधिपति रावण इस भक्ति साधना में मस्त बना हुआ. देह की ममता का विसर्जन करके "वीणा का तार टूटने पर अपनी नस को जोड़ देता है" यह अजोड़ उदाहरण हैं, इसी भक्ति के बल पर तीर्थंकर गोत्र वांधता है, ऐसे एक नहीं, अनेकों उदाहरण हैं: इस लक्ष्य को लेकर उपकारी महापुरुषोंने समय २ पर जिन गुणों से गुम्फित भाव भरे काव्य-गीतों की अमूल्य भेंट जगत को दी हैं, जिसे गाकर, सुनकर भावुक आत्मायें परमात्म पद का स्वरूप समजता हुआ, परमानन्द को प्राप्त करता है, एवं चरम लक्ष्य मुक्ति पद पाने की योग्यता ग्रहण कर लेता है ।

इन्हीं महापुरुषो में पू. कविकुलकिरीट आचार्यदेव श्रीमज्जिन कवीन्द्रसागरसूरिजी म. सा हुए, जिन्होंने भक्ति-

रस का स्रोत अपनी कृतियों में बहाया, अनेकों स्तवन, स्तुतियाँ सज्झायें, चैत्यवन्दन, उपदेशक पद इत्यादि की रचना कर स्व-साधना के साथ २ भक्तिशील भावुकों को एक उच्चतम भेंट प्रदान की हैं। इस पुस्तक में आपश्री के रचित, संस्कृत चैत्यवंदन चौवीशी, स्तुति चौवीशी दादा गुरुदेव की षट्त्रिंशिका एकादशी, एव अपने उपकारी पू गुरुदेवों के पञ्चक, तथा पू गुरुदेव श्रीमज्जिन हरिसागर-सूरीश्वरजी म सा का गुणगर्भित स्तोत्र, एव भक्तामर समस्या में स्तोत्र वगैरह हैं, जो अभी तक अप्रकाशित थे, छपवाने के लिये आपश्री ने लिपिबद्ध कर लिया था पर-कुटिल काल की करामत से थोडे समय में ही आपश्री कवलित हो चुके, अत प्रकाशित न हुआ। १८ वर्षों से जयपुर में पू सज्जनश्रीजी म सा के पास वैसाही पड़ा हुआ था, पालीताणा में २ वर्ष पहिले प्रसगोपात्त वातचीत के समय "पूज्य आचार्यश्री की कृतियाँ अप्रकाशित पड़ी है" ऐसा पू सज्जनश्रीजी म सा ने फरमाया तब मैंने कहा कि कृपा करके भिजवा दिये, मेरी इच्छा है प्रकाशित कर-वाने की, बस सब मेटर आगया जयपुर से, और मैंने व्यवस्थित करके प्रेस कोपी बनाई, लेकिन प्रेस इत्यादि की असुविधा से इतना समय फिर बीच में गया. अब संयोग सानुकूल मिलने से इच्छा-साकार बनी हैं। संस्कृत विभाग के साथ हिन्दी की स्तवन चौवीशी. छोटे २ अन्य कई स्तवन, प्रार्थनायें, उपदेशक पद, सज्झायें इत्यादि का भी सकलन कर लिया गया है, जो आपश्री के ही बनाये हुए हैं, पहले कई अलग २ पुस्तकों में प्रकाशित हैं। अन्त में यही विनम्र विज्ञप्ति है-पाठकगण भक्ति-रस में तरबोल बनकर स्व-साधना करें।

प्रेस कोपी करते हुए हर प्रकार से सावधानी रखी गई है फिर कई कारणों से भूल रह जाना स्वाभाविक है, अतः सुज्ञ जन सुधार कर पढ़े एवं क्षम्य करें।

पू. गुरुदेवश्री की संक्षिप्त जीवनी पू. विदुषीरत्ना श्री सज्जनश्रीजी म. सा. (विशारद) ने लिखकर पुस्तक में प्रकाशित करने के लिये भेजी हैं अतः मैं उनकी आभारी हूं।

प्रूफ संशोधन का कार्य पंडितवर श्री कपूरचन्द्रभाई आर. वारैया ने अपने अमूल्य समय का उपभोग देकर किया है, इसलिये वे धन्यवाद के पात्र हैं। पुस्तक प्रकाशन में जिन २ महानुभावोंने अपनी सम्पत्ति का सदुपयोग किया उन्हें भी धन्यवाद ... किमधिकम्

साध्वी श्री दिव्यप्रभाश्री
(सरोजिनी)

शुभं भवतु सर्वेषाम्

कविकुलकिरीट आचार्यश्री जिनकवीन्द्रसागरसूरिजी म. सा.

(ले० साध्वीश्री सज्जनश्रीजी (विशारद')

इस अनादि कालीन चतुर्गत्यात्मक संसार कानन में अनन्त प्राणी स्व-स्व कर्मानुसार विचित्र-विचित्र शरीर धारण करके कर्म विपाक को शुभाशुभ रूप से भोगते हुए भ्रमण करते रहते हैं। उनमें कोई आत्मा किसी महान् पुण्योदय से मानवशरीर पाकर सद्गुरु संयोग से स्वरूप का भान करके प्रवृत्ति की ओर गमन करते हैं। जन्म-जरा-मरण से छूट कर वास्तविक मुक्ति सुख प्राप्त करने के लिए तप संयम की साधना पूर्वक स्व-पर कल्याण साधते हैं। ऐसे ही प्राणियों में से स्वर्गीय आचार्यदेव थे। जिन्होंने बाल्यावस्था से आत्मविकास के पथ पर चलकर मानव जीवन को कृतार्थ किया।

वंश परिचय व जन्म

आप श्री के पूर्वज सोनीगरा चौहान क्षत्रिय थे और वीरप्रसविनी मरुभूमि के घघाणी ग्राम में निवास करते थे। वि सं ६०० में श्री देवानंद सूरि से प्रतिबोध पाकर जैन ओसवाल बने और अहिंसा धर्म धारण किया पूर्व पुरुष जगाजी शाह रानी आकर रहने लगे। रानी से पाहण और फिर व्यापारार्थ इन्हीं के वंशज श्रीमलजी वि १६१६ में लालपुरा चले गये थे।

वहाँ भी स्थिति ठीक न होने से इनके वंशज शेष-मलजी पालनपुर आये और यहीं निवास कर लिया। इसी वंश में वेचरभाई के सुपुत्र श्री निहालचन्द्र शाहकी

धर्मपत्नी श्रीमती बब्बूबाईकी रत्न कुक्षि से वि. सं. १९६४ की चैत्र शुक्ला १३ को शुभ स्वप्न सूचित एक बालक ने अवतार लिया।

पिता माता के इससे पूर्व कई बालक बाल्यावस्था में ही काल कवलित हो चुके थे।

अतः उन्होने विचार किया कि हमारा यह बालक जीवित रहा तो इसे शासन सेवार्थ समर्पित कर देंगे। 'होन हार बिरवान के होत चिकने पात' के अनुसार यह बालक शैशवावस्था से ही तेजस्वी और तीव्र बुद्धिशाली था।

जब हमारे यह दिव्य पुरुष केवल १० वर्ष के ही थे तभी पिता की छत्रछाया उठ गयी। और यह प्रसंग इस बालक के लिए वैराग्योद्भव का कारण बना।

शोकग्रस्त माता पुत्र अपनी अनाथ दशा से अत्यन्त दुःखी हो गये 'दुःख में भगवान् याद आता है यह कहावत सही है। कुछ दिन तो शोकाभिभूत ही व्यतीत किये। बालक धनपत ने कहा-माँ मैं दीक्षा लूँगा।

मुझे किसी अच्छे गुरुजी को सौंप दें। माता ने विचार किया अब एक बार बड़ी बहिन के दर्शन करने चलना चाहिये। माताजी की बड़ी बहिन जिनका नाम जीवीबाई था। स्वनाम धन्या प्रसिद्ध विदुषी आर्यारत्न श्रीमती पुण्यश्रीजी महाराज सा के पास दीक्षा लेकर साध्वी बन गयी थी।

उनका नाम श्रीमती दयाश्रीजी म. सा. था। श्रीमती रत्नश्रीजी म. सा. ने इस बुद्धिमान तेजस्वी बालक की भावना को वैराग्यमय आख्यानों से परिपुष्ट किया।

और गणाधीश्वर श्रीमान् हरिसागरजी म सा के पास धार्मिक शिक्षा लेने को कोटे भेज दिया ।

वहाँ रहकर शिक्षा प्राप्त करने लगे । थोडे दिनों में ही इन्होंने जीवविचार, नवतत्त्व, आदि प्रकरण एव प्रतिक्रमण स्तवन सज्झाएँ आदि सीख लिये ।

गणाधीश महोदय कोटा से जयपुर पधारे वहाँ वि स १९७८ के फाल्गुन मास की कृष्णा पचमी को १० वर्ष के किशोर बालक धनपत शाहने शुभ मुहूर्त में बड़ी धूम धाम से ४ अन्य वैरागियों के साथ दीक्षा धारण की ।

इनका नाम 'कवीन्द्रसागर' रखा गया और गणाधीश महोदय के शिष्य बने ।

अध्ययन

अपने योग्य गुरुदेव की छत्रछाया में निवास करके व्याकरण, न्याय काव्य, कोश, छन्द अलकार आदि शास्त्र पढे एवम् सस्कृत, प्राकृत, गुर्जर आदि भाषाओं का सम्यग्ज्ञान प्राप्त किया व जैन शास्त्रों का भी गम्भीर अध्ययन किया ।

"यथा नाम तथा गुणा" के अनुरूप आप सोलह वर्ष की आयु से ही काव्य प्रणयन करने लग गये थे ।

स्वल्पकाल में ही आशु कवि बन गये । आपने संस्कृत और राष्ट्र भाषा में काव्य साहित्य की अनुपम वृद्धि की है ।

दार्शनिक एवम् तत्त्वसार से पूर्ण अनेक चैत्यवन्दन, स्तवन, स्तुतियाँ, सज्झाएँ और पूजाएँ बनाई है, जो जैन

साहित्य की अनुपम कृतियाँ है। जैन साहित्य के गम्भीर ज्ञान का सरल एवम् सरस विवेचन पढ़कर पाठक अनायास ही तत्त्वज्ञान को हृदयंगम कर सकता है। और आनन्द समुद्र में मग्न हो सकता है। जैन समाज को आपसे अत्यधिक आशाएँ थी परन्तु असामयिक निधन से वे सब निराशा में परिवर्तित्त हो गयी।

आपने ४१ वर्ष के संयमी जीवन में ३० वर्ष गुरुदेव के चरणों में व्यतीत किये और मारवाड़, कच्छ, गुजरात, उत्तर प्रदेश, बंगाल में विहार करके तीर्थयात्रा के साथ ही धर्मप्रचार किया।

जयपुर जेसलमेर आदि कई ज्ञानभण्डारों को सुव्यवस्थित करके सूचीपत्र बनाने आदि में गुरुवर्य महोदय को सहायता की।

आपही के अदम्य साहस और प्रेरणा से वि सं. २००६ में मेडता रोड़ फलोदी पार्श्वनाथ तीर्थ में गुरुदेव श्री जिन हरिसागरसूरीश्वरजी म. सा. के करकमलों से ही श्री पार्श्वनाथ विद्यालय की स्थापना हुई। उसी वर्ष गुरुदेव ने मेड़तारोड़ में उपधान मालारोहण के अवसर पर मार्गशीर्ष शुक्ला १० के दिन आपको उपाध्याय पद से विभूषित किया।

आपके गुरुदेव पक्षाघात से उसी वर्ष पोष कृष्णा अष्टमी को स्वर्गवास हो जाने पर उपस्थित श्री संघ ने आपश्री को आचार्य पद पर विराजमान होने की प्रार्थना की किन्तु आपश्रीने फरमाया कि हमारे समुदाय में परम्परा से वडे ही इस पद को अलंकृत करते हैं।

अत' यह पद वीरपुत्र श्रीमान आनन्दसागरजी महाराज सा सुशोभित करेंगें, मुझे जो गुरुदेव बना गये हैं, वही रहूँगा ।

कितनी विनम्रता और नि स्पृहता !! ।

य ग दान

आपको आतमसाधना के लिये एकान्त स्थान अत्यधिक रुचिकर थे । विद्याध्ययनान्तर आपश्री योगसाधना के लिए कुछ समय ओमियाँ के निकट पर्वत गुफा में रहे थे । एवम् लोहारट के पास की टेकडी भी आपका साधना स्थल रहा था ।

जयपुर में मोहनवाडी नामक स्थान पर भी आपने कई बार तपश्चर्या पूर्वक साधना की थी ।

वहाँ आपके सामने नागदेव फन उठायें रात्रि भर बैठे रहे थे ।

यह दृश्य कई व्यक्तियोंने आँखों दिखा था । आप हठयोग की साधनाएँ आसन प्राणायाम मुद्रानेति धौती आदि कई क्रियाएँ किया करते थे ।

तपश्चर्या

प्राय देखा जाता है कि ज्ञानाभ्यासी साधु साध्वी वर्ग तपश्चर्या से वचित रह जाते हैं ।

किन्तु आप महानुभाव इसके अपवाद रूप थे । ज्ञानार्जन एवम् काव्य प्रणयन के साथ-साथ तपश्चर्या भी समय समय पर किया करते थे । ४० वर्ष के सयमी

जीवन में आपने मासक्षमण, पक्ष क्षमण अट्ठाइयां, पंचौले, आदि किये । तेलों की तो गिनती ही नहीं लगायी जा सकती है ।

साहित्य सेवा

आपने सैंकडों छोटे मोटे चैत्यवन्दन, स्तुतियाँ, स्तवन, सज्झाएँ आदि बनायें. रत्नत्रय पूजा, पार्श्वनाथ पंचकल्याणक पूजा, महावीर पंचकल्याणक पूजा, चौसठ प्रकारी पूजा, तथा चारों दादा गुरुओं की पृथक् पृथक् पूजाएँ एवम् चैत्री पूर्णिमाँ कार्तिक पूर्णिमाँ-विधि उपधान, विंशति स्थानक, वर्षीतप, छःमासी तप, रोहिणी तप के देव वन्दन आदि विशिष्ट रचनाएँ की हैं ।

आप संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी में समान रूप से रचनाएँ करते थे ।

बहुत सी रचनाओं में आपने अपना नाम न देकर अपने पूज्य गुरुदेवश्रीका गुरु भ्राताओं का एवम् अन्यों का नाम दिया हैं ।

इस सारे साहित्यका पूर्ण परिचय विस्तारभय से यहाँ नहीं दिया जा रहा हैं ।

आपकी प्रवचन शैली ओजस्वी दार्शनिक एवम् ज्ञान युक्त थी ।

भाषा सरल सुबोध और प्रसादगुणयुक्त थी । रचनाओं में अलंकार स्वभावतः ही आ गये हैं । इस प्रकार आप एक प्रतिभाशाली कवि थे ।

आचार्य पद

विक्रम स २०१७ की पौष शुक्ला १० को प्रखर वक्ता व्याख्यान वाचस्पति वीरपुत्र श्री जिन आनन्दसागर-सूरीश्वरजी म सा के आकस्मिक स्वर्गगमनान्तर सारी समुदाय ने आप ही को समुदायाधीश बनाया। अहमदाबाद चैत्र कृष्णा ७ को श्री खरतर गच्छ सघ द्वारा आपको महोत्सव पूर्वक आचार्यपद पर प्रतिष्ठित किया गया।

आप श्री स्वभाव से ही सरल मिलनसार और गम्भीर थे दयालुता और हृदय की विशालता आदि सद्गुणों से सुशोभित थे।

आप श्री के अन्त करण मे शासन गच्छ व समुदाय के उत्कर्ष की भावनाएँ सतत जागृत रहती थी। पालीताना में निर्मायमान श्री जिन हरि विहार भी आप श्री की सत्प्रेरणा का कीर्तिस्तम्भ है।

आप श्री के कई शिष्य हुए पर वर्तमान में केवल श्री कल्याणसागरजी म सा एवम् मुनि श्री कैलास-सागरजी म सा विद्यमान है।

समुदाय के दुर्भाग्य से आप श्री पूरे एक वर्ष भी आचार्य पद द्वारा सेवा नहीं कर पाये कि करालकाल ने निर्दयता पूर्वक इस रत्न को समुदाय से छीन लिया।

उग्र विहार करते हुए स्वस्थ सबल देहधारी ये महान पुरुष अहमदावाद से केवल २० दिन में मन्दसौर के पास बूढा ग्राम मे फा शु एकम को सध्या समय पधारे।

वहाँ प्रतिष्ठा कार्य व योगोद्वहन कराने पधारे थे लेकिन फा शु ५ शनिवार २०१८ की रात्रि को १२½ बजे

अकस्मात् हार्टफेल हो जाने से नवकार का जाप करते एवम् प्रतिष्ठा कार्य के लिए ध्यान में अवस्थित ये महानुभाव संघ व समुदाय को निराधार निराश्रित बनाकर देवलोक में जा विराजे। प्रतिष्ठादि कार्य न हो पाया। "बुढा" गांव में आज भी फा. शु. ५ के दिन "कवीन्द्र मेला" लगता हैं, जैन जैनेतर बड़ी श्रद्धा से स्मृति में श्रद्धाञ्जलि अर्पण करते हैं।

दादा गुरुदेव व शासनदेव उस महा पुरुष की आत्मा को शान्ति एवम् समुदाय को उनके पदानुसरण की शक्ति प्रदान करें।

यही हार्दिक अभिलाषा है।

पूज्य गुरुदेव के पादपद्मों में शत-शत-वन्दन हो।

इति शुभम्।

श्रीशङ्खेश्वरपार्श्वनाथाय नमः

श्री-आदिनाथजिनस्तुतिः

(स्रग्धरा)

आदौ येनात्मवीर्यं प्रबलतरतपः संविधायातिघाति-
कर्मांशान् दूरयित्वार्जितमतिविपुलालोकमालोकनीयम् ।
दत्तं मात्रेऽस्य माता निजतनुजवधूः स्रग्धरा सा शिवश्रीः,
कीदृग्रूपेति द्रष्टुं शिवपुरमगमन्नाभिदेवोऽवताद् वः ॥

श्री-शान्तिनाथजिनस्तुतिः

(स्रग्धरा)

चक्रे गर्भे स्थितनाम्ना सकलमपि जगद् मारिदुर्पीडितं यो,
स्वीकार्यं प्रफुल्लं स्थितिमथ विदधे चक्रिणा स्फूर्जितौजाः ।
ज्ञानं दत्त्वा निजं हि जगति जनगणं प्रेरयन्मोक्षमार्गे,
पायात् पायाज्जिनेशो वितनभवभयभ्रान्तिभिच्छान्तिनाथः ॥

श्री-नेमिनाथजिनस्तुतिः

(स्रग्धरा)

शङ्खं यः पाञ्चजन्यं जनितजनमुदं नादयँल्लीलयैव,
चक्रार्धेन प्रभुर्नैश्चलदिदमभितश्चालयामास कृष्णम् ।
दोर्दण्डे वज्रवीर्यो हरिमिव हलभृद्धानरं वीतराग-
स्त्यागात्याऽऽगाज्जिमत्या सह सुपरिजनः सोऽस्तु नेमिः शिवाय ॥

श्री-पार्श्वनाथजिनस्तुतिः

(स्रग्धरा)

श्रुत्वा यस्याऽऽस्यपद्मोद्भवमतिविशदं मन्त्रराजाधिराजं,
भोगी योगी बभूवानलकुलजटिलज्वालया दग्धदेहः ।
सेहेऽन्यैर्नैव सह्यं शठकमठकृतोपप्लवं ध्यानमग्नः,
सेवाहेवाकिनां श्रीजिनपतिरचिरात् पार्श्वनाथः श्रिये स्तात् ॥

श्री-महावीरजिनस्तुतिः

(स्रग्धरा)

षट् कल्याणान्यभूवन् भुवनभयहरोद्योतकाराणि यस्य,
तीर्थाधीशान्तिमस्य प्रबलबलवतः पञ्च हस्तोत्तरायाम् ।
स्वात्यां निर्वाणलक्ष्मीः प्रणयपरिगता स्रग्धरा यं च वव्रे,
कल्याणश्रीकृते स्ताच्छ्रमणभगवतां सोऽग्रणीर्वीरनाथः ॥

श्री-सद्गुरु-स्तुतिः

(स्रग्धरा)

अज्ञानैरन्धलानां कुनिगमकुहरे भूमदुःखौघभाजां,
सम्यग्ज्ञानाभिरामाञ्जनमतिदयया प्राञ्ज्य मञ्ज्वञ्जसैव ।
नव्यं दृष्ट्वा युगं यो विरचयतितमां सद्गुरुर्ज्ञानदो मे,
श्रेयः श्रीमान् सुखाब्धिर्मुनिगणभगवां श्री हरेःसागरःस्तात् ॥

श्री-कवीन्द्रकुलदेवीभारतीस्तुतिः

(स्रग्धरा)

स्याद्वादोत्तुङ्गरङ्गत्तरललहरिभिः प्लावयन्ती समन्ताद्,
वृक्षान् दुर्वादिरूपान् प्रणयपरिगतान् धीवरान् प्रेरयन्ती ।
नानाभङ्गाभिरामाभिनवरसभरा कल्मषोच्छेदिनी या,
गङ्गेवाभारतीनां प्रणतिनुतिजुषां भारती साऽस्तु दात्री ॥

प्रयोजनाभिधेय-भावना

(रथोद्धता)

श्री जिनेन्द्रमहिमामहोदधौ सत्कवीन्द्रवरकेलिरद्भुता ।
मञ्जु मोक्षसुगतौ रथोद्धता, सस्करोतु सततं सता गतिम् ॥

※

चैत्यवंदन-चतुर्विंशतिका

श्री-आदिनाथजिनचैत्यवन्दनम्

(मन्दाक्रान्ता)

जीयादादीश्वरजिनपति स्व पति-प्रार्च्यपादो,
जज्ञेऽज्ञाने युगलविकल शासितु विश्वमादौ ।
प्रादुश्चक्रेऽथ सुवहुविधास्तोकलोकस्थिर्ति यो,
या देवाना प्रियजनगणोऽभूद्दधल्लब्धवर्ण ॥ १ ॥

दीव्यद्दिव्ये दिविपतिकृते प्राज्यराज्याभिषेके,
रङ्गद्गगामलजलभृतै सम्पुटैवारिजानाम् ।
नाभेयस्याह्वमहमिकया जातहर्षप्रकर्षै-
र्वीक्ष्य व्यक्त युगलिकजनै सिञ्चितं नम्रकम्रै ॥ २ ॥

ब्राह्मी क्रीडाकुलमिति कलार्थप्रद प्रार्थकेभ्यो,
बोधाधार विदलितमल योगिगम्य सुरम्यम् ।
लक्ष्मीलीलालयमिव वुधानन्दन नन्दन यत्,
पादद्वन्द्वोत्पलदलमलं भाभर नौम्यह तत् ॥ ३ ॥

[—युग्मम्]

श्री–अजितनाथजिनचैत्यवन्दनम्

(– शिखरिणी –)

महापूर्वाद्रौ सद्दिनकरमनन्तस्फुटपदं,
जगन्नेत्रं मित्रं कुवलयसमुल्लासनपदम् ।
अभव्योलूकानां बलमपहरन्तं गतमलं,
सुभव्यानां मार्गप्रणयनपटुं बोधविपुलम् ॥ १ ॥

गवां व्यूहैर्विश्वं विगततिमिरं वै विदधतं,
स्वयम्बुद्धं श्रीदं सुविहितहितं दोषरहितम् ।
जगद्दीपं देवावृतमुत कृतान्तस्य जनकं,
न जातूपद्रोतुं क्वचिदपि तमो यं प्रभवति ॥ २ ॥

सुतीर्थे ताराङ्के समुदितमिहालोक्य महसा,
अनाद्यात्मोपेक्षिन्निबिडजडिमाध्वान्तहरणम् ।
शिवश्रीविश्रामं प्रकटितसदाशं कजकरं,
गजाङ्कं नन्नम्येऽजितजिनपतिं चारुचरणम् ॥ ३ ॥

श्री–सम्भवजिनचैत्यवन्दनम्

(वसन्ततिलका)

सत्प्रातिहार्यसहितं सुमनोभिरर्च्यं,
सेनाङ्गजं तुरगलाञ्छितपादपद्मम् ।
श्रीसम्भवेशमपुनर्भवमाप्तरूपं,
भक्त्या भजे भृशमहं भवभेदिनं तम् ॥ १ ॥

यस्य प्रशस्यसुमुखं परमं प्रशान्तं,
कान्तं कलानिधिपदाधिकशान्त्यनन्तम् ।
निर्लाञ्छनं च सकलं प्रणिधानभाजो,
दृष्ट्वेप्रमाशु शिवधाम लघु प्रयान्ति ॥ २ ॥

श्रीमत्प्रतापतपनोऽपि तमोनिभानि,
पापानि लुम्पति जवाद् भविना जनानाम् ।
नित्यं क्षितौ विचरतोऽपि रुजादयो नो,
नूनं विरोभुवति सैष शिवश्रिये स्तात् ॥ ३ ॥

श्री–अभिनन्दनजिनचैत्यवन्दनम्

(पञ्चचामर)

सुबोधदर्शनाद्यनन्तसच्चतुष्कराजित,
प्रशस्तसूक्तमौक्तिकैरलङ्कृत सता मत. ।
स मामहोऽपुनर्भवं महामहोऽन्वित जरा-
न्तय त्वं कृपा विधाय याचकं शिशु भवात् ॥ १ ॥

प्रचण्डभवारिदर्पसर्पसर्पशासक,
पवित्रसच्चरित्रपात्रगात्रपापनाशक ।
स भवाब्धनीरानन्दनोऽभिनन्दनोऽमित,
नमन्तु मे मनोऽभिनन्दनाय वन्दनाकृत ॥ २ ॥

अमानबोधदानदायक सदानशालिना
भवन्ति नो भयानि चापि यत्पदावलम्बिनाम् ।
सदानतं सदामदैवनायकैरपि स्तुत,
चिरश्रिये भवत्वसौ महेश्वर शिवाश्रित ॥ ३ ॥

श्री–सुमतिजिनचैत्यवन्दनम्

(द्रुतविलम्बित)

त्वमसद्भुमम कृतप्रार्थनो, न लभते लभते चिदगोचरम् ।
कुनयशाद्रियुगाम्बुजसेवनात्, सुमतना भवमाममिवाञ्छितम् ॥ १ ॥
स्वमरगैश्विद्भुरना सुरा, प्रभवने सुरनागण सदा ।
न च भवेत् किमनाथमुना हत, समपदोऽसन्नेविनगन्दरा ॥ २ ॥

त्रिसमयोद्भवभावभवस्थितिं, करतलस्थितमौक्तिकपुञ्जवद् ।
समवलोकयतेऽस्तु शिवश्रिये, जिनपतिः सुमतिः सुमति प्रदः ॥३॥

श्री–पद्मप्रभजिनचैत्यवन्दनम्

(द्रुतविलम्बित)

गुणनिधे ! जिन ! पद्मप्रभाभिध !, जगदधीश ! जगत्त्रयतारकः ।
तव कृतोपकृतिर्भविनां भवे ऋभुभवतां सहसा शिवसिद्धये ॥१॥

तव सुसङ्गतिसङ्गतमानवः, प्रविततां च निजात्मरमां श्रयेत् ।
सुचतुरोऽपि विना वहनं किमु.जलनिधेर्हि यथातटमुद्व्रजेत् ॥२॥

जगति पार्श्वमणिस्पृगयोऽर्जुनं, भ्रमरभाक् कृमिको भ्रमरो भवेत् ।
तव विभो भविना कृतसेवन-स्तदिव वै परमालपदाश्रयी ॥३॥

श्री–सुपार्श्वनाथजिनचैत्यवन्दनम्

(भुजङ्गप्रयातम्)

महानन्दमार्गे प्रदीपानुरूपं,
महामोहवृत्रव्रजोद्भ्रान्तिभाजाम् ।
अगम्यं दुरापं च मिथ्यात्विनां यत्,
सुपार्श्वं सुपार्श्वर्हितः संश्रये तत् ॥१॥

अनित्यं च नित्यं पदार्थं समर्थो,
नयैर्बोधयन्नात्मधर्मप्रपन्नः ।
सुपार्श्वोऽस्तु मे तीर्थकृद् वै गतोहः,
सस्वस्तिकः स्वस्तिसृड् ध्वस्तमोहः ॥२॥

प्रतिष्ठक्ष्माभृत्सुतः सत्प्रतिष्ठः,
क्षमाभृत्पतिः सर्वदः सर्वश्रेष्ठः ।
अनिष्टाकरं कर्मणामष्टकं यो,
जघानाघनारिर्ह्यघौघोच्छिदे स्तात् ॥३॥

श्री-चन्द्रप्रभजिनचैत्यवन्दनम्

(शार्दूलविक्रीडितम्)

स्वस्त्यस्ति प्रकटप्रभावभवन संसारभीभेदन
काम कामकृपीटयोनिशमनं दुष्टाष्टकर्मार्दनम् ।
घोराघौघकुधर्मधर्ममथन यच्छर्मकृच्चन्दन,
श्रीमच्चन्द्रजिनेन्द्रवन्दनमिदं भूयात्सदानन्दनम् ॥ १ ॥

तातो मे लवणाम्बुधिश्चपलया लक्ष्म्या भगिन्याङ्कितो,
लोके पङ्कजिनीप्रियोऽहमपि वै दोषाकरख्यातिमान् ।
इत्येव नु विचार्य सेव भजते चन्द्रोऽपि चन्द्रप्रभ,
हर्तुं स्वीयकलङ्कपङ्कमखिलं शङ्केऽङ्कदम्भादिव ॥ २ ॥

सोऽपूर्णोऽपि लघुत्वभागपि जगद्वन्द्यो यदद्यानधि,
सर्वज्ञोत्तममौलिभूषणपदं, प्रेङ्खद्विधुर्विद्यते ।
तच्चानन्तगुणोदधेर्जिनपतेर्विश्वैकपूज्यात्मन ,
पादाब्जाभ्युपपत्तिभूगुणकणोन्मेषातिलीलायितम् ॥ ३ ॥

श्री-सुविधिनाथजिनचैत्यवन्दनम्

(रामगिरिरागेण गीयते)

सर्वदृग्ज्ञानभानुप्रभोत्फुल्लित,
परिमलापूरित विबुधकान्तम् ।
नापि मिथ्यात्वरुध्वान्तविध्वसित,
पाप-तापापनीत ज्ञानन्तम् ॥ १ ॥

सर्वदा स्वस्मदा मौलिमालागत,
सन्मन षट्पदासेवनीयम् ।
पद्मजात न नो तरलतारलयित,
नो जडान्तर्हित वन्दनीयम् ॥ २ ॥

इत्थमादर्शरूपं ह्यपूर्वं गुरो-
र्योगिनामङ्घ्रियुग्मारविन्दम् ।
पुष्पदन्तस्वयम्भोः शिवश्रीश्रितं,
तच्छ्रये स्याद्यथानन्दकन्दम् ॥ ३ ॥

श्री-शीतलनाथजिनचैत्यवन्दनम्

(गीतिका)

नवशारदेन्दु-कलाकलापविलासहास्यकृदास्य ! भो !,
जिन शीतलामल शासनाकल ! विश्वपूजित ! हे विभो ! ।
भगवन् ! सुवर्णसवर्णवर्ण ! विवर्ण ! हे, गतलाञ्छन !
परमेष्ठिमुख्य ! सदिष्ट ! पारगतायिवत्सकलाञ्छन ! ॥१॥

पुरुषोत्तमोत्तम ! दर्शनाभयदानदायक ! नायक !
परमेश्वरामरनायकार्चित ! खण्डितस्मरसायक ! ।
शरणागतप्रतिपालकाचलमोक्षमार्गसुचालक !
भवसंभवामयदोषहृत् ! कृतसर्वदुर्गतितालक ! ॥२॥

वसुकर्म्मधातुकपश्यतोहर ! लुण्टिताखिलसम्पदां,
बहुभीमपद्धतिसत्रसंसृतिमोहितासुमतां सताम् ।
दयया स्यतन्यदयालुरक्षकसार्थवाहक ! भक्तिभृत्,
तव पत्कजं प्रणमाम्यहं कृतदुष्कृतानि परिक्षिपन् ॥ ३ ॥

श्री-श्रेयांसनाथजिनचैत्यवन्दनम्

(शालिनी)

नेत्रं वक्त्रं गात्रमालोचकानां,
यस्यात्मानं निर्विकारं विधत्ते ।
शूलं चापं चक्रमस्त्रं न किञ्चिद्,
धत्ते हस्ते नापि मालावलेव ॥ १ ॥

य प्रद्युम्न यौवनोद्भेदमात्म-
योनिं कन्दर्पं स्मर रागरज्जुम् ।
शान्ते मृत्युं मन्मथं सवरारिं
विद्विष्यापि स्नाक् समन्ताद् बभूव ॥२॥

य प्रद्युम्नो वैष्णवो विश्वसेव्य,
सद्भव्याना हृच्छयो वै अनङ्ग ।
भूयात्स श्रीनन्दनो वन्दनीय,
श्रीश्रेयास श्रेयसेऽविस्नसर्थी ॥ ३ ॥

श्री-वासुपूज्यजिनचैत्यवन्दनम्

(रथोद्धता)

मोहगाढतिमिरासने रविं,
स्वान्तरागिजयलोहितच्छविम् ।
अष्टदुष्टभयभूधरे पविं,
ध्वस्तभव्यजनदुर्भवाटवीम् ॥ १ ॥

सम्यगात्मपरिबोधसङ्गत-
स्यात्पदाङ्कितमतप्रवर्तकम् ।
दुर्नयालिकलिस्यवादिना,
सन्नयेन युगपन्निवर्तकम् ॥ २ ॥

धर्मकर्मपरिवर्मितात्मना,
ब्रह्मशर्मनिर्माणतत्परम् ।
वासुपूज्यपुरुषोत्तम परं,
संस्मरामि रमणीयदर्शनम् ॥ ३ ॥

श्री–विमलनाथजिनचैत्यवन्दनम्

(दोधक)

शान्तमनोहरनिर्भयरूपं,
मोदितश्रीकृतवर्मसुभूपम् ।
काञ्चनवर्ण्यमवर्ण्यमसङ्गं,
श्रीविमलं विमलाङ्गमनङ्गम् ॥ १ ॥

स्वेदमलेन नवाप्युपलिप्तं,
सच्चिदनन्तगुणैकसुदीप्तम् ।
विस्तृतसंसृतिभीतिलताहृत्,
सम्प्रति यत्प्रतिमामहिमाभृत् ॥ २ ॥

कर्मकलङ्कविनाशनमुख्यं,
सुव्रतसाधितभावसुपूज्यम् ।
दिव्यदयामयमामयहीनं,
नौमि जिनं सततं सुखलीनम् ॥ ३ ॥

श्री–अनन्तनाथजिनचैत्यवन्दनम्

(तोटकम्)

विभया विभयासुमतां हृदयं.
हृदयङ्गमगोभिरहो सदयम् ।
सदयं विदधाति च यः सुमनः,
सुमनः प्रमदाक्षसरा विदितः ॥ १ ॥

विदितामलकेवलतः सकलं,
सकलं भुवनं कलयन् सकलः ।
सकलोत्तमगीतमयैः समयैः,
समयैकपथः तमहं महये ॥ २ ॥

महये प्रमदन्तु जना वृजिनै-
वृजिनैरहित महित च सुरै ।
सुखं स्तवनैर्नयकैः सततं,
सतत नुतमीशमनन्तजिनम् ॥ ३ ॥

श्री-धर्मनाथजिनचैत्यवन्दनम्

(शार्दूलविक्रीडितम्)

दीव्यद्देवविमानमानदमने, हर्म्येऽतिरम्ये स्थितो-
जामोपाह्वरे नवीननगरे, श्री सौव्रतेयो जिन ।
श्रीमद्भानुनृपान्वयाम्बरमणिश्चूडामणिर्योगिना,
भव्यश्रेणिमनोऽभिवाञ्छितकृते, स स्तादमणि स्वस्सदाम् ॥१॥

दृष्ट्वापूर्वपवित्रता पविरसौ श्रित्वा यदङ्घ्र्यम्बुजं,
गोत्रीय बलवत्तम पविममु, कुर्वन् बलारेरपि ।
मन्ये लाञ्छनमाययोल्लसति, सोऽस्मिन् विश्वविश्वेधुना
श्रेय श्रीचुमसौ शिवाय भगवान्, श्री धर्मनाथोऽस्तु मे ॥२॥

धर्मोऽधर्मभिदिन्द्रवन्दितपदो, धर्मं भजध्व सदा,
धर्मेणाक्षयश व्यधापि प्रणतिं, धर्माय धध्व मुदा ।
धर्माद् दुर्गतिरेति दूरमचिराद्, धर्मस्य धर्मोऽवनो,
धर्मं भक्तिरता शिवैकफलदा, धर्मेधि कर्मान्छिदे ॥ ३ ॥

श्री-शान्तिनाथजिनचैत्यवन्दनम्

(उपजाति)

यत्पादपद्मस्य मृग. सुभक्त्या
ममैतनाद्यात्पुमेन्दुमङ्क ।
अभूद्धि युक्त. मानोऽद्य सेवा
नृणा न च किं विदधाति भद्रम् ? ॥ १ ॥

यः सार्वभौमेन्दिवरानुरागा-
दविन्दमानः कुशलं कथञ्चिद् ।
जरीगृहाञ्चक इतीन्द्रपूज्यां,
तीर्थाधिपत्यश्रियमिद्धवृद्धाम् ॥ २ ॥

जिनाचिरेयः परमेष्ठिमुख्यः,
सतां मनोऽधिष्ठितशान्तिनाथः ।
सच्छान्तये स्ताद् वरभक्तिभाजां,
सोऽनन्तज्ञानादिगुणैः प्रपूर्णः ॥ ३ ॥

श्री-कुन्थुनाथजिनचैत्यवन्दनम्

(उपजाति)

सतामचक्रं हतवैरिचक्रं,
हस्ते प्रशस्तं च बभार चक्रम् ।
चक्रिश्रियो नाथतया समर्थोः.
गार्हस्थ्यभागप्यथ कुन्थुनाथः ॥ १ ॥

चक्रेऽन्तरद्विड् विजयं प्रबिभ्रत् ।
सद्धर्मचक्रं प्रददे चतुर्धा ।
धर्मोपदेशं किल पञ्चत्रिंशद्-
गुणैः प्रमुख्यैश्च गिरां जिनेशः ॥ २ ॥

पुत्रः पितावद् भवतीति योऽत्र,
देदीप्यते सूरभवोऽपि धाम्ना ।
भव्याब्जश्रीनन्दनपद्मपाणि-
र्महोदयः स्ताद् स मनोन्याय ॥ ३ ॥

श्री-अरनाथजिनचैत्यवन्दनम्

(द्रुतविलम्बित)

य इह चक्रधरोऽजनि राजसु,
विहितनीतिविराजितशासन’ ।
वरसुदर्शनभूमिपतेस्सुत ,
भविभवोद्भवभीतिविनाशन ॥ १ ॥

गतपराभिभवादिकुभावन ,
सकलपापविवर्जितपावन ।
त्रिभुवन स्ववश विदधे विनो-
द्यममहो महता महिमाद्भुत ॥ २ ॥

अरजिन स त्रिकालविदीश्वर ,
जगति जीवनिकायकृपापर’ ।
परमशर्मविबाधककर्मणा,
वधविधानपरोऽस्तु शिवङ्कर ॥ ३ ॥

श्री-मल्लिनाथजिन-चैत्यवन्दनम्

(रामगिरिरागेण गीयते)

सर्वतोऽधौतमपि निर्मलं यद्वपु ,
स्वर्णवर्णं सकर्णं सुवर्ण्यम् ।
वस्तुतो वस्तु नास्त्युपमितो क्वचिद्-
येन स्यात् साधु तस्योपमेयम् ॥ १ ॥

सन्ति तावन्त एवात्र परमाणवो,
विश्वविश्वेऽपि यद्विश्वभर्तु ।
वपुषि सम्मीलिता पूरितास्सद्गुणै-
श्चद्धिमाङ्गस्य सा नान्यजन्तो ॥ २ ॥

इन्द्रवृन्दैः सुमन्दारमालाकुलै-
र्मौलिभिर्वन्दितोऽनन्तगन्ता,
मल्लिनाथः सनाथः सतां भवतुदे,
भवतु देवाधिदेवोऽरिहन्ता ॥ ३ ॥

श्री-मुनिसुव्रतजिनचैत्यवन्दनम्

(पञ्चचामर)

महेच्छसुव्रतव्रतीश्वरः प्रभासुरैः सुरा-,
सुरैः सुभक्तितो नमस्कृतो वृतः शिवश्रिया ।
अतुच्छकच्छपाच्छलाञ्छनोऽनिशं शुभाञ्चितं,
समाच्छताद्धरिच्छविः सतां मनोऽभिवाञ्छितम् ॥ १ ॥

सदार्यवर्यचारुचर्यप्राणिनां हृदम्बुज-,
प्रफुल्लकारणं करप्रसारणैस्तमोहरम् ।
सुमित्रभूपतेः कुलमलाम्बराम्बरध्वजं,
सुमित्रमत्र संभजे यमात्मशोधकं ह्यजम् ॥ २ ॥

मुनेः प्रभोरनन्यभक्तिजन्यधन्यताजुषां,
समेत्य नित्यमेव सोत्सुकाः शिवश्रियोऽनुगाः ।
सृजन्त्यविग्रहं करग्रहं सपर्यया मुदा,
नमामि मुन्युपाह्वसुव्रतात्तमीश्वरं सदा ॥ ३ ॥

श्री-नमिनाथजिनचैत्यवन्दनम्

(आख्यानकी)

परप्रकम्पादपनीतकम्पा,
सदन्तप्रसृत्वरदिप्तिशम्पा ।
स्निग्धा सदर्था परमा प्रधाना,
सदारसा जीवनकं ददाना ॥ १ ॥

मुदाकुलं भव्यमयूरवंश,
विदेशगं वादिविपक्षहंसम् ।
दुर्भाग्यदुर्भिक्षभरप्रणाशं,
प्रकुर्वती या सुमनोविकाशम् ॥ २ ।

अनन्यरूपाऽपि विचित्रचित्रा,
जीवातुकल्पा सुगुणैरनल्पा ।
गभीरघोषा मधुराऽजडा सा,
नमीशगीर्मेघततती मुदे स्तात ॥ ३ ॥

श्री-नेमिनाजिनचैत्यवन्दनम्

(मालिनी)

विकटमदनमल्लं हेलया यो विजित्य,
हरिमृगनयनानां कारक्षपुञ्जाग्र्यखण्ड ।
स्वगुरुजनकृतोद्वाहोत्सवोऽभोगकर्मा,
झटिति जनितप्रत्यग्वृत्तिकः शङ्खलक्ष्मा ॥ १ ॥

बहुलपललशिन्मापूरणायाचितेभ्यो,
विकलनकुलजीवेभ्योऽभयत्त्व वितीर्य ।
नवभवगृहजाना मानुरागा सुरागा,
स्वजनजनयुता तामीप्रनेर्नां मुमोच ॥ २ ॥

जननमृतिविनाशं मावाना नरानां,
सुरनरकमलाना पादमुच्चैर्दधान ।
विहरत्भरसेभ्यो बोधिदानं ददानोऽ-
तिशयभृदिह जाया-दुज्जयन्ते स नेमि ॥३॥

श्री-पार्श्वनाथजिनचैत्यवन्दनम्

(शार्दूलविक्रीडितम्)

सद्बोधाङ्कुरचारुतां विदधती दुःखोपतापौघतां,
ध्नन्त्यात्मगुणालिसस्यमतुलं संपादयन्ती सताम् ।
मिथ्यात्वाद्विजपासकस्य सुषमां या संहरन्ती सदा,
भूयात्सा मयि पार्श्वनाथभगवद्दृष्टिः सुधावृष्टिका ॥ १ ॥

श्रीलीलावसति प्रतिकृतिरहो ज्योतिर्मती सद्गतिः,
प्रेङ्खद्भारति भारती स्थितिमती वाञ्छाप्रदात्री सती ।
सम्यग्ज्ञानवतां सतां प्रणमतां दूरीकृतासद्गतिः,
भूयात्सा मयि पार्श्वनाथभगवद्दृष्टिः सुधावृष्टिका ॥ २ ॥

यद्भक्तिः समवर्ति भीतिव्रतती भव्यात्मनः कृन्तति
स्पष्टाष्टादशदोषमोषजनिता गीतिः प्रगीतार्तिभित् ।
मूर्तिः स्फुर्तिमतीह सम्प्रति जनान्दत्ते शिवश्रीमतीः
भूयात्सा मयि पार्श्वनाथभगवद्दृष्टिः सुधावृष्टिका ॥ ३ ॥

श्री-शासनाधीशमहावीरस्वामिचैत्यवन्दनम्

(हरिणी)

जयति विजयि प्रादुर्भूतं यतो वरशासनं,
विहितमनसां स्वस्मिन्सम्यक्कथाकविनाशनम् ।
नतसुरवरासेव्यं दिव्याध्वनः कृतशासनं,
जननमरणाभावस्फारं महोदयकारणम् ॥ १ ॥

प्रकटितजगज्जीवश्रेणीमनोऽभिमतं मतं,
सुनयमयमालोकाकीर्णं सतामभिसम्मतम् ।
पिहितपरमात्मीयज्योतिश्चयं प्रबलं महत्,
भवभवगतं कर्मान् हन्ति श्रितं यदलं जवात् ॥ २ ॥

श्री-पार्श्वनाथजिनचैत्यवन्दनम्

(शार्दूलविक्रीडितम्)

सद्बोधाङ्कुरचारुतां विदधती दुःखोपतापोघतां,
रुन्धत्यात्मगुणालिसस्यमतुलं संपादयन्ती सताम् ।
मिथ्यात्वाद्विजपालकस्य सुषमां या संहरन्ती सदा,
भूयात्सा मयि पार्श्वनाथभगवद्दृष्टिः सुधावृष्टिका ॥ १ ॥

श्रीलीलावलति प्रतिकृतिरहो ज्योतिर्मती सद्गतिः,
प्रेङ्खद्भारति भारती स्थितिमती वाञ्छाप्रदात्री सती ।
सम्यग्ज्ञानवतां सतां प्रणमतां दूरीकृतासद्गतिः,
भूयात्सा मयि पार्श्वनाथभगवद्दृष्टिः सुधावृष्टिका ॥ २ ॥

यद्भक्तिः समवर्ति भीतिव्रतती भव्यात्मनः कृन्तति-
स्पष्टाष्टादशदोषमोपजनिता गीतिः प्रगीतार्तिभित् ।
मूर्तिः स्फूर्तिमतीह सम्प्रति जनान्दत्ते शिवश्रीमतीः
भूयात्सा मयि पार्श्वनाथभगवद्दृष्टिः सुधावृष्टिका ॥ ३ ॥

श्री-शासनाधीशमहावीरस्वामिचैत्यवन्दनम्

(हरिणी)

जयति विजयि प्रादुर्भूतं यतो वरशासनं,
विहितमनसां स्वस्मिन्सम्यक्तयाकविनाशनम् ।
नतसुरवरासेव्यं दिव्याध्वनः कृतशासनं,
जननमरणाभावस्फारं महोदयकारणम् ॥ १ ॥

प्रकटितजगज्जीवश्रेणीमनोऽभिमतं मतं,
सुनयमयमालोकाकीर्णं सतामभिसम्मतम् ।
पिहितपरमात्मीयज्योतिश्चयं प्रबलं महत्,
भवभवगतं कर्मान् हन्ति श्रितं यदलं जवात् ॥ २ ॥

श्रुतमवता मिन्द्रभूत्यादिकद्विजवादिना,
प्रविदितचतुर्वेदाङ्गाना विमोहितचेतसाम् ।
मद्गदमथै सूक्तैर्युक्तैर्वरै कृतबोधनं,
रचयतु महावीर श्रीमानसौ मम शोधनम् ॥ ३ ॥

महावीरजिनभवस्तचक्रं चैत्यनन्दनम्

(स्रग्धरा)

ग्रामेशो दानवारिर्भरततनुरुह श्रीमरीचिस्सुरोऽथ,
पोढा सन्यास्य मर्त्या बहुललघुभवी विश्वभूति सुधाभुग ।
प्राजापत्य परेतो हरिरिति नरकस्थ प्रभूते भवेऽत,
भ्रान्त्वा चक्री स्वधाभुग् मुनिकुलमुकुटो नन्दनाख्यो बभूव ॥१॥

तत्पश्चात्प्राणताख्ये दशमतविपके पुष्पकाह्वे विमाने,
स्वप्न सिद्धार्थभूपोत्तमविमलकुले पुष्करे पद्मपाणि ।
गोनाथ सज्जगद्दग् जयतु तिमिरहा प्रत्यह योऽष्टधारी,-
श्रीवाना शत्रुरूपान्बहुविकटतरान् हन्ति यत्सोऽरिहन्ता ॥२॥

भो भो भव्या ! प्रभूताभिनवभवभिया भेदकोऽय भदन्त,
भूयां भक्त्या स्वहाभुग्गणविभुमहित श्री महावीरनाथ ।
भूयाद्वोऽल विभूत्यै भविकसमुदयाम्भोजको जृम्भकाया-
म्भोजभ्रातेभशत्रुध्वजविभुर्भगवान् पापभूध्रे भिदुर्वे ॥३॥

(शार्दूलविक्रीडितम्)

गच्छे स्वच्छतरे वरे खरतरे ज्ञानक्रियाशालिन,
श्रीश्रीश्रीसुखसागरा मुनिगणाधीशा बभूवुस्तत ।
श्रीमन्तो भगवानसागरवरा पूज्या गुरौ सादरा,
भव्याम्भोजदिवाकरा विजयिनो चारित्रिषु शेखरा ॥१॥

तत्पट्टोदयभूधरे वरतरे प्राप्तप्रतापोदयाः,
श्रीमन्तो हरिसागराः सुगुरवो दोषाकरोद्वेजकाः ।
सत्स्वान्ताम्बुजबोधकास्ततमःसंहारिणो हारिणो,
धीमन्तो गणधारिणः प्रतिपदं सद्भिर्जयन्ति श्रिताः ॥२॥

तेषामन्तिपदा कवीन्द्रविदुषा सद्बोधविस्तारिणी,
भव्या चारुकवीन्द्रकेलिकलिका ह्याविष्कृता प्रीतये ।
तस्यां श्रीजिनराजराजिप्रगुणैः सम्यग्गुणैर्गुम्फित-
आद्योऽयं स्तवको समाप्तिमगमत् स्वस्तिश्रिये सोऽस्तु वः ॥३॥

स्तुति–चतुर्विंशतिका

श्री–आदिनाथजिनस्तुतिः

(द्रुतविलम्बितवृत्तम्)

वृषभलाञ्छन ! वाञ्छितदायक !,
प्रदलितातिखलस्मरसायक ! ।
नतसुरासुरसेवितसत्पद !,
प्रददतादनिशं शिवसम्पदः ॥ १ ॥

जिनवरा हतमोहतमोभराः,
परविभावविवर्जनभास्वराः ।
त्रिसमयेऽपि शिवं समुपेयुषः,
शिवसुखाय भवन्तु गतद्विषः ॥ २ ॥

विधिनिषेधपरं खलु शासनं,
कुमतकल्पितवादविनाशनम् ।
जयतु तद्धि सदातवरैः कृतं,
सुमनसां सुखदं नय संस्कृतम् ॥ ३ ॥

अनघसद्गमुदे श्रुतदेवता,
विमलवर्णवरा विबुधाश्रिता ।
"हरिकवीन्द्र" जनै सतत नता,
द्रुतविलम्बितसद्गतिसङ्गता ॥ ४ ॥

श्री-अजितनाथजिनस्तुतिः

(शार्दूलविक्रीडितम्)

द्वन्द्वातीतनिसर्गभावजनित प्राप्त सुख योगिना,
ध्येय ध्येयतमेन येन सकलं सर्वात्मना निर्भयम् ।
भव्योद्भावितभव्यतकभवन यत् कल्पनावर्जित,
वन्दे देवपूजित तमजितं देवाधिदेव जिनम् ॥१॥

नित्याध्यात्मसुखातिलीनमनसा सवीक्ष्य शान्तात्मना,
येपा गारिपदश्रिय निरुपमा-मात्यन्तिकानन्ददाम् ।
मुञ्चन्त्येव हि जन्तवा बहुभवाभ्यासोद्भव शात्रव,
तेऽर्हन्तो मम रान्तु शान्तिबहुल दिव्य पद निर्मलम् ॥२॥

उत्पाद-व्यय-नित्यतादिसुभग पर्याय-द्रव्यात्मना,
सद्वस्तुप्रतिपादित मतिमता जिज्ञासुतालम्बिनाम् ।
स्याद्वादेन विशारदेन विशद येनेह विश्वत्रय-
व्यापी सैप सदैव वै विजयतामाप्तैरल स्वीकृत ॥३॥

धन्या ये विनयावनम्रवपुषो निरछन्नताशालिन,
साफल्य निजजन्मन सुमनस कुर्वन्ति भक्त्या प्रभो. ।
तेपा शासनदेवता "हरि कवी-न्द्रै." सन्तत सस्तुता
कुर्याद् विघ्नकरिप्रणाशचतुर "शार्दूलविक्रीडितम्" ॥४॥

श्री-सम्भवनाथजिनस्तुतिः

(उपजाति-वृत्तम्)

सेनाङ्गजत्वेन निजारिहन्ता,
जातो द्विधा यो विजयी जगत्याम् ।
असम्भवः सम्भवनामकोऽपि,
स्वयं स वः सम्भवनाशकः स्तात् ॥ १ ॥

गतग्रहा मुक्तिसुखैकसक्ता,
जिनास्तकेऽष्टादशदोषमुक्ताः ।
अनाद्यविद्याप्तविमूढभावं,
हरन्तु मे रान्तु समस्वभावम् ॥ २ ॥

विरोधिभावेन परस्परं हि,
गतं विसंवादगतिं परां यद् ।
समं प्रकुर्वन्ति नया यदुत्थाः,
सुनैगमाद्या जयताद् मतं तद् ॥ ३ ॥

करैश्चतुर्भिर्वरशङ्ख-माला,-
धनुश्शरान् या प्रतिबिभ्रती सा ।
गवासना वोऽस्तु "कवीन्द्र" गीता,
धिये सुगौराशु सुरोहिणी वै ॥ ४ ॥

श्री-अभिनन्दनजिनस्तुतिः

(तोटक-वृत्तम्)

वर संवरवंशवितानविधिः,
कृतसंवरशत्रुविनाशविधिः ।
भुवनत्रयविस्तृतकीर्तितति-
र्जयतादभिनन्दनतीर्थपतिः ॥ १ ॥

विबुधाधिपसेवितसच्चरणा-
श्वरणाश्रितभव्यमनोहरणा ।
हरणा भवसम्भवदु खधियां,
खधिया च जयन्तु जिना भुवने ॥ २ ॥

मदमत्तमहापरवादिकृता-
द्भुतभूतमय समय सुधियाम् ।
न करोति भय नयशालि मत,
यदि चेतसि जैनमिद रमते ॥ ३ ॥

वरकेकिविराजितदेहलता,
करशक्तिसरोरुहसङ्कलिता ।
सु "कवीन्द्र" जनै सतत प्रणुता-
शु सुरी जडता हरतादिह सा ॥ ४ ॥

श्री-सुमतिजिनस्तुतिः

(वंशस्थ-वृत्तम्)

सुमङ्गलाङ्कोद्भव ! मङ्गलाकृते !,
कृते जनाना भव मङ्गलाकर ।
करप्रचारेण हरस्तमोभर,
भर मतेस्त्व-सुमते ! कुरु प्रभो ! ॥ १ ॥

मनस्विना मङ्गलकारण पर,
परम्परायातकुकर्मनाशनम् ।
सनन्दमार्गे कृतप्रक्रमक्रम,
क्रम जिनाना समुपास्महेऽनिशम् ॥ २ ॥

निज परोऽसाविति नात्र वर्तते,
तते मते तीर्थकृता निरूपिते ।

पितेव बालं परिपालयन्सदा,
सदात्मनां वै विदधातु रक्षणम् ॥ ३ ॥

ममारिनाशं विदधातु शृङ्खला,
सुशृङ्खला सद्वरदेन सङ्गता ।
गताम्बुजं पद्मकरा वरा सुरी,
सुरीभिरर्च्या खलु वज्रशृङ्खला ॥ ४ ॥

श्री–पद्मप्रभजिनस्तुतिः

(वंशस्थ–वृत्तम्)

हितैकहेतौ स्थगितेन्द्रियक्रियो,
यदङ्गरागे स्वमनो निधाय वै ।
भवाम्बुधौ सेतुमिवात्मसिद्धये,
श्रयामि पद्मप्रभमीश्वरं परम् ॥ १ ॥

अनन्तसंसारविहारवर्जिताः,
सुरासुराधीशनिषेविताङ्घ्रयः ।
महोदयास्तीर्थकरा महोदयं,
ममानिशं सङ्कलयन्तु बोधिदाः ॥ २ ॥

कषायकक्षक्षयदक्षमक्षयं,
विपक्षपक्षप्रतिशिक्षणक्षमम् ।
विचक्षणाक्षोभसमीक्षितं क्षितौ,
श्रुतं हि वोऽक्षेममधिक्षिपत्वलम् ॥ ३ ॥

विशिष्टवज्राङ्कुशधारिणी परा,
पराजिता या वरकाञ्चनोज्ज्वला ।
वलाय सा सामजवाहनाऽस्तु वः,
स्तुता "कवीन्द्रैः" कुलिशाङ्कुशा सुरी ॥४॥

श्री-सुपार्श्वनाथजिनस्तुतिः

(वसन्ततिलका-वृत्तम्)

वर्णादिपुद्गलविकारविहीनवृत्त्या,
गम्यं सुरम्यचरितं परमप्रशान्तम् ।
ज्योतिर्मयं वहदयं कृतभव्यभव्यं,
श्रीमत्सुपार्श्वजिननाथमहं नमामि ॥ १ ॥

ऐश्वर्य-वीर्य यशसा निधयो जिना ये,
क्षीणाष्टकर्मसुभगा गतरागरोषा ।
स्वस्ति श्रियामुदितकेलिकलाविलासै-
रानन्दिता भुवनभावविदो जयन्तु ॥ २ ॥

रागादिदोषरहितेन जिनेन सम्यक्,
प्रावर्तितं कुसुमचापविचारशून्यम् ।
दुर्वादिवादमदमन्थनमान्यमान्यं,
जैनं मतं विदधतेऽभिमतं सुधन्यम् ॥ ३ ॥

या वैनतेयमधिरोहति हेमवर्णा,
चक्रेश्वरीति विदितारिविनाशपूर्णा ।
चक्रैश्चतुर्भिरभितो विजयं वहन्ती,
हस्तस्थितैः "हरिकवीन्द्र" मतास्तु शान्त्यै ॥४॥

श्री-चन्द्रप्रभजिनस्तुतिः

(वसन्ततिलका-वृत्तम्)

यो वर्तते वरविभूतिविशेषिनोऽपि,
चन्द्राङ्कितोऽपि च गणाधिपसेवितोऽपि ।
सर्वेश इत्यपि तथापि च यो न रुद्र-
श्चन्द्रप्रभप्रभुरसावयताज्जयेभ्य ॥ १ ॥

येऽनन्तकान्तगुणराजिविराजिताङ्गाः,
कामादिशत्रुगणनाशविभूतिचङ्गाः ।
पूर्णाः पवित्रपरमात्मपदप्रतिष्ठा-
स्तीर्थङ्कराः परिपुनन्तु मनोऽस्मदीयम् ॥ २ ॥

आप्तोक्तसूक्तमखिलं खलपु प्रकाशं,
नानाविरोधिनयवादविशिष्टकायम् ।
स्याद्वादमुद्रमुचितेद्धगुणप्रवृद्धं,
संसारसंसरणदुःखखलीकरं स्ताद् ॥ ३ ॥

पद्मासना घनद्युतिश्च गदाक्षमाला,
वज्राभयप्रवरचिह्नधरा विशाला ।
काली करालभयकारिमहोद्धतारीन्,
हन्यात्सदा "हरिकवीन्द्र" वरैः स्तुता नः ॥४॥

श्री-सुविधिनाथजिनस्तुतिः

(द्रुतविलम्बित-वृत्तम्)

शिवविधिः सुविधिः परमेश्वरः,
प्रकटितात्मविशिष्टगुणाकरः ।
सकललोकविलोकनचिद्गुणो,
नयकरो जयतात् स जिनेश्वरः ॥ १ ॥

नमदमर्त्यनराधिपमस्तक-
मुकुटरत्नविभोज्ज्वलितक्रमाः ।
ततचतुर्गतिसंसृतिवल्लरी,-
खनकबोधपराः प्रभवन्तु नः ॥ २ ॥

जिनवरैरुपदेशितमस्तु तत्,
प्रवचनं विबुधाधिपसम्मतम् ।

सुमतिसुकृतकाननसिञ्चनं,
कुमतिमेघघटापवनं परम् ॥ ३ ॥

विमलनीलरुचि कमलासना,
'हरिकवीन्द्र''नुता खलु मानवी ।
अवतु सा विटपाङ्गसुमालिका,
वरदपाशविराजिकराम्बुजा ॥ ४ ॥

श्री-शीतलनाथजिनस्तुतिः

(रथोद्धता-वृत्तम्)

आत्मसादिव भवत्सुविस्तृत,
भूरिभीमभवसन्ततौ कृतम् ।
कर्मशर्महरण सुचिक्कण,
शीतल ! स्य मतिमोहसम्भवम् ॥ १ ॥

मोहमल्लप्रतिमल्लविक्रमा,
प्राप्तसिद्धगतयो गतक्रमा ।
सर्वभावकृतदृष्टिकेवल-
ज्ञान-दर्शनधरा जयन्तु ते ॥ २ ॥

शासन च विहित जिनाधिपै-
र्जन्म-मृत्यु-गदनाशन भुवि ।
कल्पवृक्षपदतोऽतिरेकि यद्,
नत् समस्तु शरण भवे भवे ॥ ३ ॥

खड्गराजिकरया नतात्मना,
हेमकान्तिपुरुपाग्रदत्तया ।
हन्यते सुमहिषीस्थया न किं ?
''सत्कवीन्द्र''नुतयाऽशिवानि चै ॥ ४ ॥

श्री-श्रेयांसनाथजिनस्तुतिः

(हरिणी-वृत्तम्)

हृदयतिमिरं सान्द्रं मिथ्यात्वधीरजनीभवं,
सकलविषये कृत्याकृत्ये विवेकविनाशनम् ।
वहुलकुटिलात्मद्रुक्कर्मक्षपाचरमार्गदं,
हरतु भगवाँ श्रीश्रेयांसः प्रवोधितसद्गतिः ॥ १ ॥

प्रततविमलज्ञानज्योतिस्सुपूरितदिङ्मुखां,
त्रिभुवनजनानन्योद्बोधप्रादुष्कृतसत्पथान् ।
स्मर सुजडता-दुर्वाग्दोषाकरक्षयकारिणः,
परिषदि गवां व्यूहै विश्वं प्रकाशयतो जिनान् ॥ २ ॥

वसति सरसो यस्मिन्विद्यानदीगण आदिभू-
र्गुणगणमणीलक्ष्म्यादीनां भवेदिह यो विभुः ।
अविरलमहोहाकल्लोलैः कषायदवानलं,
हरतु विमलः सत्सिद्धान्तोदधिर्विवुधाश्रितः ॥ ३ ॥

विलसति यका मालावज्राभयप्रदघण्टभा-
गतिजयवती दीव्यद्देवार्च्चितक्रमपङ्कजा ।
नुत "हरिकवीन्द्रा" सा देवी तमालसमप्रभा,
जनयतु महाकाली कालं द्विषां नरवाहना ॥ ४ ॥

श्री-वासुपूज्यजिनस्तुतिः

(शार्दूलविक्रीडितम्)

पूजां यो न समीहते परकृतां पूज्यस्वभावाद्भुतः,
पूजा पूजकसिद्धये भुवितले यस्यानघा जायते ।
पूजा यस्य कृता भवेन्निजकृतेऽव्याबाधसम्पत्तये,
सैषःस्ताद् वसुपूज्यसूनुरनिशं श्री वासुपूज्यप्रभुः ॥१॥

येषामात्मगुणा स्वरूपविशदा ज्ञानादयोऽगोचरा,
राजन्ते बहिरात्मना मुनिजनैर्ध्येया अनन्तास्तके ।
नित्यानन्दविलासिनो जिनवरा क्षीणाष्टकर्मात्मिनो,
देयासुर्वरदर्शन सुकृतिना स्वस्तिश्रिय स्पर्शनम् ॥२॥

सत्तीर्थङ्करनामकर्मसुभग सम्प्राप्य तीर्थङ्करा-
स्तीर्थं नेकगुणान्वित मतिमता प्रावर्तयन्स्वस्तु तत् ।
नानादुर्गतिदु खवारिबहुले ससारभीमोदधौ,
मज्जज्जन्तुसुकन्तुतारकमहापोतायित सिद्धये ॥३॥

कुन्देन्दुद्युतिजित्वरी सुरनता गोधासना शङ्करी,
यस्या कीर्तिरल विभाति भुवने ससृत्वरी भास्करी ।
प्रज्ञोत्तसि "कवीन्द्र" गीतचरणाऽमर्त्येश्वरी द्व्यक्षरी,
भव्यानामशिवानि नाशयतु सा गौरी सदज्जेश्वरी ॥ ४ ॥

श्री-विमलनाथजिनस्तुतिः

(वसन्ततिलका-वृत्तम्)

स्वस्तिश्रिया पतिरतीतगतिर्गरीयान्,
सम्यग्गुणैरनणुभिर्महतो महीयान् ।
पूर्वापरप्रतिविरोधविहीनवृत्ति-
र्दिश्यात् स मे विमलनाथजिन' सुवृत्तिम ॥ १ ॥

मुक्ताशना सुगतयश्चरणप्रधाना,
सत्पक्षसाधितसमस्तसुवस्तुसारा ।
तीर्थङ्करा गतमला वरराजहसा
मन्मानस परिपुनन्तु विवेकिमुख्या ॥ २ ॥

दिव्यध्वनिर्विहितशस्यविधि सुवर्णा,
जीवेष्टजीवनवितानविधानभव्य ।

नानागमः खलकलप्रगतेर्विरोधी,
शान्त्यै स वः सरसजैनरवाम्बुवाहः ॥ ३ ॥

गान्धारि 'देवि' पविसन्मुशलं वहन्ति !,
भव्यात्मनामधिवसन्ति ! सुमञ्जुपद्मम् !
नीलप्रभे ! शमनिशं निहतारिजातं,
त्वं कुर्वेति ! प्रजय दिव्य-"कवीन्द्र" वर्ण्ये ! ॥ ४ ॥

श्री-अनन्तनाथजिनस्तुतिः

(वंशस्थ-वृत्तम्)

अनादिकालार्जितकर्म शर्मणां,
विरोध्यसच्चेतनतासमुद्भवम् ।
अपारसंसारविहारकारणं,
स्यताद्धि वोऽनन्तजितः क्रमोत्पलम् ॥ १ ॥

यथास्थितं ये युगपज्जगत्त्रयं,
विलोकयन्ते करमौक्तिकं यथा ।
अनन्तविज्ञानमनोहरा वरा,
जयन्तु ते केवलिनो जिनेश्वराः ॥ २ ॥

नयप्रमाणै प्रगुणीकृतं जिनै,
श्रुतं श्रुतोत्तंसमिवात्मनः श्रियः ।
कषायकान्तारगतेर्निकन्दनं,
करोतु कल्याणरमाभिनन्दनम् ॥ ३ ॥

"कवीन्द्र"-वर्ण्या स्मरति प्रभोज्ज्वलां,
मरालगां गेयतमां स मानसीम् ।
सदग्निशङ्कां प्रदहेत् समर्त्तिका-
मरालगां गेयतमां समानसीम् ॥ ४ ॥

श्री-धर्मनाथजिनस्तुतिः

(शालिनी-वृत्तम्)

आविश्वक्केऽनादिकालावलुप्त,
सम्यग् येनात्मैकधर्मोऽस्तकर्मा ।
लोकालोकोद्भासि बोधप्रधानो,
धर्मेश स्तादात्मधर्मप्रसूत्यै ॥ १ ॥

दोषोन्मुक्ता दिव्यसस्थानभव्या,
स्याद्वादश्रीप्रीणितानेकभव्या ।
तीर्थाधीशाश्चक्रिशक्राभिवन्द्या,
भूयासुस्ते वोऽचिराम विभूत्यै ॥ २ ॥

जीवाजीवोद्भूतभावाभिराम,
धर्माधर्मस्थानविस्तारगम्यम् ।
लोकालोकानन्ताभ वै जिनोक्त,
साङ्गोपाङ्ग तद्विवेकाय वोऽस्तु ॥ ३ ॥

भूयाद् देवी सिद्धयानासिहस्ता,
स्फूर्जच्छक्ति-नाशितारातिवर्गा ।
या गौराङ्गी 'सत्कवीन्द्रै." सुवण्या,
धीश्रीवृद्धयै स्तान्महामानसी मे ॥ ४ ॥

श्री-शान्तिनाथजिनस्तुतिः

(दोधक-वृत्तम्)

शान्तिजिन शिवद कृतसेव,
सेवकस्वर्गसदीश्वरसङ्घ ।
सङ्घजना ! प्रणमन्त्वचिराज,
राजकपूजितपादमपापम् ॥ १ ॥

पापमतिं प्रहरन्तु जिना मे,
नामयदोषविशोषितदेहाः ।
देहनिवासविनाशविशिष्टाः,
शिष्टजनेष्टविधानसुरागाः ॥ २ ॥

रागविहीनजिनैरुपदिष्टं,
दिष्टमपि प्रदधद् घटमानम् ।
मानविरोधकरं कृतमानं,
मानितमस्तु सुखैकनिदानम् ॥ ३ ॥

दानमलं ददती परमाया-,
मायपरारिविघातकशान्तेः ।
शान्तिजिनप्रभुशासनदेवी,
देव 'कवीन्द्र' नुतास्तु विभूत्यै ॥ ४ ॥

श्री-कुन्थुनाथजिनस्तुतिः

(उपजाति-वृत्तम्)

अपुद्गलाकारमनादिसिद्धं,
प्रसिद्धमेवोद्धुरयुक्तिभेदैः ।
जनीजरामृत्युभयैर्विहीनं,
पदं प्रदिश्यात् प्रभुकुन्थुनाथः ॥ १ ॥

यदात्मभूमौ बहुमोहमूलं,
प्रसारितानन्तसुदुःखशूलम् ।
कुकर्मबब्बूलकवृक्षसङ्घं,
समूलमुन्मूलयताज्जिनौघः ॥ २ ॥

अशेषदोषक्षयसम्भवेन,
चिदात्मना यत्प्रकटीबभूव ।

प्रमाणभूतं बहुसत्व्यपेक्षं,
शिवाय जैन मतमस्तु नित्यम् ॥ ३ ॥

स्फुरत्कृपाणाङ्कनशोभिहस्ते,
प्रशस्तविद्युद्रुचिराङ्गवर्णे ! ।
जयाय दिव्यात्म "कवीन्द्र" वर्ण्ये !
भवाशु मे त्व पुरुषाग्रदत्ते ! ॥ ४ ॥

श्री-कुन्थुनाथजिनस्तुतिः

(शार्दूलविक्रीडितम्)

शब्दातीतमगम्यमात्मिकगुणारामाभिराम धन,
कामोद्वेगकषायकर्मरहित नो मोहसम्मोहितम् ।
सर्वज्ञ जगता प्रभु खलु जगत्कर्तृत्वभावोज्झित,
वन्दे कुन्थुजिनाधिपं सुरनराधीशैरल पूजितम् ॥ १ ॥

मोक्ष यान्ति मुमुक्षवो निरुपमोपादानक कारण,
प्रादुष्कृत्य निमित्तकारणतयाङ्गीकृत्य य सर्वथा ।
त जैनेश्वरमात्मधर्मपदवीं सम्प्राप्तुकामोऽनिश,
नानारोगवियोगशोकजनित त्यक्त्वा भव सम्भजे ॥ २ ॥

रागद्वेषविशेषदोषरहितैस्तीर्थङ्करैरर्थत ,
पञ्चत्रिंशदनुत्तरैर्वरगुणै सयुक्तया सद्गिरा ।
प्रोक्त यत्तदपूर्वबोधरचित बोधप्रधानैरथो,
सूत्र सूत्रितमत्रतैर्गणधरैर्वन्दे मुदाह सदा ॥ ३ ॥

देवी दिव्यगुणा 'कवीन्द्र' विबुधैर्या वन्दिता विश्रुता,
श्रीमत्कुन्थुजिनेशशासनरता जेया न वै वैरिभि ।
विघ्नानिघ्नतम करोतु कमलोल्लासप्रधान पर,
भक्त भक्तिगुणैकमानुचरित भित्त्वातिविघ्न बला ॥ ४ ॥

श्री-अरनाथजिनस्तुतिः

(द्रुतविलम्बित-वृत्तम्)

जिनवरार ! नरामरनायक !
प्रकृतपूजन ! मोक्षविधायक ! ।
प्रथितप्रस्थितदुर्गमसंसृते-
रतिचिरञ्जय नाथ ! जगत्पते ! ॥ १ ॥

गगनवत्सममेव सुविस्तृताः,
परगुणान्न कदापि समाश्रिताः ।
प्रगतलेपपदाः धृतसत्पदाः,
प्रतिजयन्तु जिनाः सदपापदाः ॥ २ ॥

मलबहिष्कृतशुद्धतरो विभुः
सरससद्गुणमौक्तिकरत्नभूः ।
विहितधीवरवृत्तिरनन्तगः,
स्यतु मलं स जिनागमसागरः ॥ ३ ॥

गरुडपृष्ठमधिष्ठितभूधनेऽ-
सहनसङ्घविभेदनतत्परे ! ।
अरिकरे ! भव चक्रधरे ! सुरि !,
"हरिकवीन्द्र"नुते ! मम शङ्करी ॥ ४ ॥

श्री-अरनाथजिनस्तुतिः

(उपजाति-वृत्तम्)

चक्रित्वतीर्थङ्करताप्रधानो,
भव्यात्मसन्तारणसावधानः ।
अरप्रभुर्बोधविधेर्विधाता,
स मेऽस्तु बोधाय शिवप्रदाता ॥१॥

ये वीतरागा भववृक्षमूल-
मुन्मूल्य दुर्दु खफल समन्ताद् ।
नैसर्गिक स्वानुभवप्रसिद्ध,
पद गता घ्नन्तु ममापद ते ॥ २ ॥

स्याद्वादसिद्धान्ततत मत तै,-
र्जिनेश्वरैश्चारु निरूपितं यद् ।
अनन्तधर्मात्मकवस्तुबोध,
पूर्णं यथार्थं प्रददातु मे तद् ॥ ३ ॥

मा धारिणी धैर्यगुणाधिगम्या,-
रिभिश्च युद्धे विजयैकरम्या ।
अरार्हत शासनभक्तिरक्ता,-
न्तरायभूतानि पदानि हन्तु ॥ ४ ॥

श्री–मल्लिनाथजिनस्तुतिः

(शार्दूलविक्रीडितम्)

यो लङ्केशविलोपनप्रतिभवद्विश्वैकपूज्यत्वभू,-
र्यश्चक्रे सुतपोवन परभयोच्छेदप्रधान परम् ।
यस्सन्न्यायधुरीणता परिदधत् सल्लक्ष्मणासेवितो,
सीतेश. स मुदे शिवाय भवताद् रामावतार प्रभु ॥ १ ॥

श्रीमन्तोऽमृतभूमयो विमलताविस्तारिण सर्वत ,
सन्तापक्षयकारिण स्थिरतरा मुक्तात्मतालङ्कृता ।
अन्तर्भावितरत्नराजिरुचिरा अस्ताधभाव गता,-
अव्यासा जडराशयो न च यके जाड्योच्छिदे सन्तु ते ॥२॥

उत्पाद व्यय ध्रौव्यभाक् सदमुना सम्यक्पदेन स्फुटा,
बीजेन द्रुमसन्ततेरिव समुद्भूता प्रमाणाद्भुता ।

नित्यानित्यपदार्थसार्थविलसद्बोधाऽविरोधा मिथः,
कृत्याकृत्यविवेकसारविशदा सा द्वादशाङ्गी श्रिये ॥ ३ ॥

प्रत्यक्षप्रतिपक्षपक्षदलने दक्षः स यक्षेश्वरः,
कभ्रानम्रशिरोभिरिद्धविभवैर्भक्तैरिहासेवितः ।
गर्जत्सिन्धुरबन्धुरो वटकुटाऽऽवासप्रचारः परो,
विघ्नध्वंसविधायको भवतु वो धर्माध्वसञ्चारिणाम् ॥४॥

श्री–मुनिसुव्रतजिनस्तुतिः

(पञ्चचामर–वृत्तम्)

अनन्तकान्तशान्तसद्गुणात्मसौरभोत्तरं,
श्रियां विलासमन्दिरं प्रकाशपुण्यसुन्दरम् ।
जडाशयोज्झितं श्रियेऽस्तु तत्सदाप्यगोचरं.
तमश्चयस्य सुव्रताङ्घ्रियुग्ममञ्जसोदरम् ॥ १ ॥

अनादिमोहवैरिणं महाभटं हठोत्कटं,
भवाजिभूमिभोगगात्मदत्तदुष्टसङ्कटम् ।
कुकर्मसैन्यविक्रमं सुवृत्तनिग्रहक्रमं.
जयन्तु ते जिना जयन्त एव तं विनाश्रमम् ॥ २ ॥

मलापहारि निर्मलं रसात्मकं सुजीवनं,
सुतीर्थभूतमाप्तवर्णवर्णितं च पावनम् ।
क्षमाधरैः प्रवाहितं तथापि नो जडात्मकं,
श्रिये मतं जिनस्य तत् सदाक्षरप्रधानकम् ॥ ३ ॥

सुभक्तिरक्तभक्तचित्तदुष्टकष्टदारिणि !,
सुखप्रचारिणि ! स्ववैरिवारनाशकारिणि ! ।
ममामत क्षयाशु गौरि ! गोधिकासनस्थिते !,
स्फुरत्सुवर्णवर्णसुन्दरे ! कवीन्द्रवर्णिते ! ॥ ४ ॥

श्री-नेमिनाथजिनस्तुतिः

(शार्दूलविक्रीडितम्)

यद्ध्यानाध्वनिसिंहनादविगलद् दुर्बोधदन्तावल,
यत् सस्योदय मेघवृष्टिविलसत्पुण्याङ्कुरे शाड्वलम्।
य सन्द्रक्लिताशिवैकफलद चेतस्विचेतोवनम्,
श्रीमन्नेमिजिनेश्वर स हि सता दत्ता पद पावनम् ॥ १ ॥

निस्नेहाश्च निरञ्जना अथ च ये निवृत्तयो भूतले,
पात्र नो परितापयन्ति परम सान्द्र तमो घ्नन्ति ये।
यस्त्वानन्त्यमहो! नयन्ति हि सम सम्यक् प्रकाशात्मता,
निष्कम्पा प्रजयन्तु ते जिनवरा दीव्यत्प्रदीपा समे ॥ २ ॥

स्फूर्जत्सूर्यविभाप्रकाशविजयी सर्वार्थसंदर्शने
चञ्चच्चन्द्रकलाविलासविजयी सन्तापसंहारणे।
रङ्गद्गाङ्गसुवारिपूरविजयी पापौघप्रक्षालने,
साङ्गोपाङ्गजिनागमो विजयता स्याद्वादमुद्राङ्कित ॥ ३ ॥

देवी स्वीयशयाञ्जयोर्निदधती शाखा रसालस्य या,
स्वोत्सङ्गे सुकुमारबालयुगल या लालयन्ती स्फुटम्।
सिंहस्थारिविनाशिनी विजयिनी हेमप्रभाभासुरी,
साम्बालम्बनमस्तु मे प्रतिपद दिव्यै "कवीन्द्रै"र्नुता ॥ ४ ॥

श्री-पार्श्वजिनस्तुतिः

न योऽङ्गनासङ्गपराजितात्मा,
न शत्रुसन्धाननशस्त्रचङ्ग।
न कुत्सिताचारविचारसार,
प्रभु स पार्श्व जयतादमार ॥ १ ॥

एकान्तशान्तात्मगुणाभिरम्या,
एकान्तशान्तात्मगुणाधिगम्या ।
भव्यावलीभव्यविधानभव्या,
जिनाधिपाः सन्तु शिवाय सौम्याः ॥ २ ॥

सूर्यः प्रदीपो लवणं यथा स्याद्,
ज्ञानं तथा स्यात् स्वपरावभासि ।
प्रमाणसिद्धं परमं तमोभिद्,
जिनागमे भक्तिजुषा तदस्तु ॥ ३ ॥

शस्ता चकासत्करवालहस्ता,
फणावलीमण्डितदेहदेशा ।
पद्मावती या धरणप्रिया सा,
कवीन्द्रवन्द्या भवतात् सुखाय ॥ ४ ॥

श्री-वीरजिनस्तुतिः

(उपजाति-वृत्तम्)

रागादिदोषैरजितो यथार्थ-
वादी कृतार्थो जगदेकपूज्यः ।
सर्वज्ञ ऐश्वर्यगुणैः परात्मा,
दन्तोऽस्तु वीरो भवसंक्षयाय ॥ १ ॥

मेघालिवद् रागविशेषभावाः
येषां प्रणष्टा निखिला निकृष्टाः ।
ते वीतरागाः प्रदिशन्तु नित्य,-
मेकान्तमात्यन्तिकमात्मसौख्यम् ॥ २ ॥

द्रव्यानुयोगं चरणानुयोगं,
तथैव धर्मैककथानुयोगम् ।

अविप्रकाशं गणितानुयोगं,
नमामि भक्त्या हृतरोगभोगम् ॥ ३ ॥

"कवीन्द्र"वर्ण्ये प्रहतारिवर्गे,
सिंहस्थिते सासिकरे सदर्घ्ये ।
सिद्धायिके सिद्धिपद विदध्या
सदापि वीराप्तपदाश्रितानाम् ॥ ४ ॥

श्री–चतुर्विंशतिजिन स्तोत्रम्

(द्रुतविलम्बित–वृत्तम्)

स्वस्तिश्रिया धाम निकामसुन्दर,
जगत्त्रयाह्लादनकारि चन्द्रिरम् ।
सुबोधप्रेङ्खन्मकरन्दमन्दिर,
नमामि नाभेयममन्दनन्दिरम् ॥ १ ॥

अनादिकालात्मगताष्टकर्मणा,
वध विधायास्तविशिष्टशर्मणाम् ।
मदर्थसङ्घो जितशत्रुनन्दन ,
समस्तु मे सोऽजित आत्मनन्दन ॥ २ ॥

स्वयम्भवज्ञानसुमञ्जुलाकृति-
र्बभूव योऽल हि विनाप्यलङ्कृती ।
स सम्भवो वो भवसम्भव भय,
भिनत्तु दिश्यात् पदमाशु निर्भयम् ॥ ३ ॥

समस्तु विस्तारियशो वशीकृत,
जगत्त्रय येन सुगेधसंस्कृतम् ।
असवरारिर्नृपसवराङ्गजोऽ
भिनन्दन पापवनासने गज ॥ ४ ॥

अपारसंसारमहोदधौ यथा,
निपातितः पीडित एव मायया ।
समस्तसंसारिगणस्तकामलं,
निहन्तु देयात् सुमतिर्महोऽमलम् ॥ ५ ॥

यदंह्रिपद्मं शिवसद्मसाधनं,
श्रितं हितं मोहमहारिबाधनम् ।
स्मरज्वरार्तिप्रतिपीडनं घनं,
करोतु पद्मप्रभ आशु चिद्घनम् ॥ ६ ॥

यदात्मलीनं न मलिष्ठतां गतं,
मनो मुनीनामपि चारु दुर्गतम् ।
सुराङ्गनापाङ्गतरङ्गितं न वै,
श्रितः सुपार्श्वः स मुदेऽस्तु मानवैः ॥ ७ ॥

जितातिदोषोदयवच्छशिप्रभः,
समस्तदोषास्तविधायकप्रभः ।
जगत्त्रयीतापविनाशकप्रभः,
प्रभुस्स जीयाद् भगवाँ शशिप्रभः ॥ ८ ॥

चतुर्मुखैर्येन सुदेशनाविधौ,
सुरासुरेशैर्विहिते महाविधौ ।
विधिकृतस्वर्गमहोदयाध्वनः,
शिवाय सोऽर्हत्सुविधिर्जनावनः ॥ ९ ॥

स शीतलो मामपुनर्भवं भवं,
न वर्तते यत्र परात्पराभवम् ।
स्वयं समाध्या समलङ्कृतं पदं,
ददातु दिव्यं परमात्मसंपदम् ॥ १० ।

सुरावलीसेवितयत्क्रमोत्पल,
विहारकाले श्रितकाञ्चनोत्पलम् ।
प्रदत्तभव्यात्मसुभव्यदर्शन,
नमामि श्रेयांसजिन सुदर्शनम् ॥ ११ ॥

अनन्तसद्ज्ञानविलासनन्दन ,
स वासुपूज्यो वसुपूज्यनन्दन ।
जगत्त्रयीभावप्रकाशभास्वर ,
पतिर्जिनाना जयतादधीश्वर ॥ १२ ॥

अहो ! यमाश्रित्य समेऽपि जन्तव ,
स्वजन्मवैरेणोज्झितभावकन्तव ।
भवन्ति शृण्वन्त्युपदेशपेशलं,
ममाशु रायाद् विमल सकौशलम् ॥ १३ ॥

अनन्तकर्मांशविनाशतत्पर,
करोतु मा तीर्थकर परात्परम् ।
अनन्तनाथो विगतान्तर सम,
त्रिलोकयँल्लोकमपीह योऽसमम् ॥ १४ ॥

स धर्मनाथो निजधर्मदेशन,
समग्रलोकाग्रसुराधिवेशनम् ।
स्वभावजन्य परभाववर्जित,
तनोतु मे शाश्वतिक बहूर्जितम् ॥ १५ ॥

स शान्तिनाथो निजशान्तिवर्षण,
शिवश्रियोऽप्रान्तसुखाधिकर्षणम् ।
अनादिमिथ्यात्वविनाशिहर्षण,
करोत्वसङ्क्रान्तिवितानघर्षणम् ॥ १६ ॥

स कुन्थुनाथोऽर्थिजनं प्रपूरयन्,
स्वकामितैर्धर्ममपि प्रचारयन् ।
विनाशयन् कर्ममहारिसङ्कुलं,
भवं प्रकल्यान् मम शं निराकुलम् ॥ १७ ॥

अनादिकालीनविमोहलीनता,
मलीनता येन विनाशिता नता ।
द्रुमावली यस्य पुरो विराजते,
नमोऽस्तु तस्मायरनाथ राजते ॥ १८ ॥

निकाचितं कर्म शुभाशुभं कृतं,
क्षयं समेतीह न पश्य मत्कृतम् ।
इतीहलोकं प्रतिबोधितं नवं,
करोतु मल्लिर्भववल्लितानवम् ॥ १९ ॥

स सुव्रतः सुव्रतिनां पतिर्गतिः,
प्रणाशितात्यन्तदुरन्तदुर्गतिः ।
अकारणं जीवनिकायरक्षणं,
करोति कुर्याद् दयया मयीक्षणम् ॥ २० ॥

नमोऽस्तु तस्मै नमये जिनाय मे,
प्रकाशितं येन बलं निजं यमे ।
फलस्वरूपं परमात्मनः पदं,
समाश्रितं सम्यगहो ! गतापदम् ॥ २१ ॥

शिवाय शैवेयजिनेश्वरो मम,
समस्तु सत्याय विशिष्टनिर्ममः ।
सुरागिभोगीभवभोगसंस्कृतं,
न भोगिभोगालिरिवात्मसात्कृतम् ॥ २२ ॥

जगत्त्रयीविश्रुतकीर्तिधामक,
प्रभातकाले स्मरणीयनामक ।
विमुक्तभोगोऽपि सुभोगसङ्गत,
पुनातु पार्श्वो हृदयं स्वसङ्गत ॥ २३ ॥

जिनाय वीराय प्रसूतशर्मणे,
प्रशस्तवीर्याय हताष्टकर्मणे ।
सुरार्च्यसत्केवलचित्प्रभास्वते
नमो नमो मेऽधिगताय शाश्वते ॥ २४ ॥

अनन्तविज्ञानमनोहरा वरा,
गतारिजाता प्रकटप्रभास्वरा ।
गता गमिष्यन्त्यपुनर्भव यके,
शिवश्रिय रान्तु करे मदीयके ॥ २५ ॥

(शार्दूलविक्रीडितम्)

इत्थ श्रीजिनराजराजितगुणान्ये सस्तुवन्त्यादरात्,
श्रीमन्त सुखसागरा प्रतिपद पूज्या भवन्तीश्वरा ।
दिव्यश्रीभगवत्प्रभावविशदा सेव्या हरे सर्वथा,
नित्य भव्यकवीन्द्रकेलिसदने स्तस्त्रिश्रिय स्वामिन ॥

[समाप्तम्]

श्री-आदिनाथ-जिन-स्तुत्यष्टकम्

(मालिनी-वृत्तम्)

चरणनखमयूखा यत्प्रभोराजमाना,
अनमिमतपदाना तीव्रतापप्रदानाम् ।
खरकरकिरणानां सद्मातमप्रतापे,
समभिलषितदान संददाना जयन्ति ॥ १ ॥

चरणनखमणीनां यत्प्रभोः सत्प्रभाभि,-
स्त्रिभुवनगतमुच्चैर्यत्तमो मोहकारि ।
अभिभवभयभीतं स्थानमन्विष्यमाण,-
मनधिगतनिवासं हन्त! वै बम्भ्रमीति ॥ २ ॥

चरणकमलमध्ये यत्प्रभोः सन्नखाली,
समलहृदयनैर्मल्यं विधात्री विचित्रा ।
नतसुरललनानां चक्षुसत्फुल्लयन्ती,
सुरभिविशदप्रेङ्खत्केशरावद् विभाति ॥ ३ ॥

चरणनखविभाम्भो यत्प्रभोः प्राणभाजां,
शरणमुपगतानां पापतापाहतानाम् ।
जनयति सुखशान्ति शाश्वतीं येन लोके,
भवभवभयभ्रान्तिर्याति नाशं समन्तात् ॥ ४ ॥

अपरिमितभवाब्धौ लीनभावं गतानां,
व्यपगतमतिभाजां मोहसम्मोहितानाम् ।
चरणनखप्रभाभिर्यत्प्रभोः सत्सुधाभिः,
प्रकटितकरुणाभिरात्मबोधः प्रदत्तः ॥ ५ ॥

चरणनखमरीचिर्यत्प्रभोर्हन्ति शीघ्रं,
विकटकपटनाट्यं नाटयन्तीं विमायाम् ।
जगति मरुमरीचेस्तुल्यतां संदधानां,
जनितबहुलतर्षां प्राणिनां दुःखदां ताम् ॥ ६ ॥

निरयगतमधस्तात् प्राणिसङ्घातमुच्चैः,
सकरुणमतिदुःखैरारटन्तं किमेषा ।
चरणनखमुखेभ्यो यत्प्रभोर्निस्सृताभा,
ह्युपरितनविभागे नेतुमिच्छन्ति दिव्याः ॥ ७ ॥

विपुलविततभव्य सच्चिदानन्दपूर्णं,
चरणनखप्रसर्पज्ज्योतिरात्मस्वरूपम् ।
निदधति हृदये ये मारुदेवस्य सम्यक्,
परिणयति शिवश्रीर्मालिनी तान् द्रुत वै ॥ ८ ॥

(शार्दूलविक्रीडितम्)

इत्थ ये सुखसागर जिनवर श्रीमारुदेव विभु,
नाभेय भगवन्तमात्मनि हरे पूज्य प्रतापोद्धुरम् ।
नित्य दिव्य "कवीन्द्र" केलिसदने स्वस्तिश्रियामामित,
ध्यायन्ति प्रथिय सुखैपिसुजना क्रीडन्ति ते मञ्जुलम् ॥ ९ ॥

आद्याक्षरैरनुष्टुवि श्रीमत्सुखसागरसद्गुरुणा स्तुतिकलित–

श्री–आदिनाथ–जिन–स्तुत्यष्टम्

(शार्दूलविक्रीडितम्)

श्रीमन्त सुखसागर गदहर विध्वस्तदोषाकर,
सुत्राम्नामधिप स्मराहिदमनं क्रोधातपाहापनम् ।
खद्योतप्रतिभप्रदर्पमथन भास्वत्प्रभं भास्कर,
साक दम्भपदेन लोभकमहाकालद्रुमोच्छेदिनम् ॥ १ ॥

गर्जाक्ष्वेडनरेपणाकलकलेत्युच्चारिभि' कर्मभि,–
रन्ध्रप्रस्तरकण्टकाभदुरितै किम्पाककामान्वितात् ।
वश्येर्मोहमलिम्लुचस्य विकटै रागैरभिसह्कुलाद्,
देहालेदयया महाभववनादुद्धारक रक्षकम् ॥ २ ॥

रामासङ्गविवर्जित शिवरमाक्रीडाकृते नन्दन,
गङ्गेव स्वसुभापया शुभवता मिथ्यात्वपङ्कोच्छिदम् ।
द्वेष जन्तुगणो निरीक्ष्य निखिल ह्याजन्मजात च य,
षट्पादोऽतिमधूज्झतीह स यथा पुष्प विना पीडया ॥३॥

विध्वस्ताकचया मनोवशकरा ध्यानस्थिता आत्मनो,
नानायोगविधानकैः पटुतरं जानन्ति यं योगिनः ।
शिक्षां शिष्यवदामनन्ति विमलामैकेन्द्रियेन्द्राः सदाऽऽ-
नन्दायाथ सुदर्शनं प्रभवति यस्यैव सत्प्राणिनाम् ॥ ४ ॥

गर्ह्यां यस्य मुखान्तिकेऽमृतरसां स्वां सौम्यतां वीक्ष्य सोऽ-
च्छेन्दुः क्षुद्रतनुर्ह्रिया प्रतिकलं क्षुब्धः क्षयत्यात्मना ।
खल्वेषो मिहिरो महापदि गतो यस्याङ्घ्रिजानां रुचाऽ-
रक्षाकारसमः प्रतापयति यः स्मेलातलं यत्पुरा ॥ ५ ॥

तत्पश्चादधुना स एव गगने भग्न प्रणष्टोऽभवद्,
राजा यातु गणस्य दाशरथिना मृत्वा यथा दुर्गतो ।
नन्दन्तः खलु सावधानमनसो ध्यायन्ति भव्या यकं,
तेभ्यः पाणिनिपीडनं विदधतः स्वर्गापवर्गश्रियौ ॥ ६ ॥

पादाब्जं प्रविलोक्य यस्य चलनावस्थास्वहो! भूरिशोऽ-
थो सोढुं न हि दुस्सहां छवितर्तीं तस्येश्वराः कण्टकाः ।
जन्ये कापुरुषा यथा नतमुखा नूनं बभूवुस्तथा,
कल्याणाय नमन्ति यं स्म तरवः सर्वे च ते पक्षिणः ॥७॥

रम्यान् रत्नमयान् विमुच्य मुकुटान् दिव्यस्रजो वज्रिणां,
सद्भक्त्या नमतां श्रयन्ति सततं पादोत्पलं यस्य तम् ।
गुप्ताध्वं वचनं च भूघनमलं संशोध्य तेभ्योऽधुना,
रुं ह्यज्ञानतमोभिदे जिनपतिं श्रीमारुदेवं भजे ॥ ८ ॥

(गीतिका)

इत्थं भक्तिभावितचेतनाः सुजना भजन्ति जिनं मुदा,
सुखसागरा भगवन्त इष्टविधायिनो हरिपूजिताः ।
प्रभवन्ति ते सु"कवीन्द्र"केलिविलासिनो भवनाशिनो,
हतवैरिणश्च शिवश्रियः पतयोऽपुनर्भववासिनः ॥ ९ ॥

आत्राम्परनिस्सारिता श्रीसुखसागरसद्गुरुस्तुति –
श्रीसुखसागरं वन्दे, रागद्वेषविनाशिनम् ।
गच्छे खरतरानन्तं, पायोजकरसद्गुरुम् ॥

●

श्री–तारङ्गतीर्थाधिपति–स्तोत्रम्

(वंशस्थ–वृत्तम्)

शिवश्रियोऽमन्दविलासमन्दिरं,
गताघिदुर्व्याधिभरं सुसुन्दरम् ।
अजातिमृत्युप्रभवं सदोदयं,
श्रये सुतारङ्गनगाधिनायकम् ॥ १ ॥

अपारसंसारमहोदधिस्थिति–
विधानसंपीडितजन्तुतारकम् ।
प्रशस्तसेतुं गजकेतुमीश्वरं,
श्रये सुतारङ्गनगाधिनायकम् ॥ २ ॥

अनादिमोहोद्भवभावभाविते,
कुकर्मभिर्भीमभवाटवौ जनं ।
प्रपीडयते तानि तुदन्तमात्मना,
श्रये सुतारङ्गनगाधिनायकम् ॥ ३ ॥

इतस्ततो दुःखनिपातदुःस्थिते,
प्रगाढमिथ्यात्वतमोन्धले जने ।
सुदर्शनालम्बनदानभासुरं,
श्रये सुतारङ्गनगाधिनायकम् ॥ ४ ॥

निजात्ममर्मव्यथनप्रदक्षिणा,
कषायकान्तारमहीरुहाश्रिता ।

कुबुद्धिवल्ली वितता तदुद्भिदे,
श्रये सुतारङ्गनगाधिनायकम् ॥ ५ ॥

मनोभवोल्लासवितानकारणं,
निजेन्द्रियारामगतिप्रसारणम् ।
मनोऽपि संयम्य समाधिसाधनं,
श्रये सुतारङ्गनगाधिनायकम् ॥ ६ ॥

निरस्तबाह्यात्मविभावकश्मलः,
समाधिमास्थाय जितेन्द्रियश्चिरम् ।
अपुद्गलानन्दितचित्तवृत्तिकः,
श्रये सुतारङ्गनगाधिनायकम् ॥ ७ ॥

निधाय चित्तं परमात्मनः पदे,
रजस्तमः सात्त्विकभावमाश्रितः ।
समस्वभावो निजशत्रुमित्रयोः,
श्रये सुतारङ्गनगाधिनायकम् ॥ ८ ॥

(स्रग्धरा)

तारङ्गोत्तुङ्गतीर्थे जिनपतिरजितः श्रीसुखाब्धिः परात्मा,
नित्यानन्दप्रधानः प्रकटितभगवत्ताऽर्चितः श्रीहरिभ्यः ।
स्तुत्यो दिव्यैः "कवीन्द्रै" रसकरिनिधिभूमानसंवत्सरोऽसौ,
चैत्रे पक्षे सुकृष्णे खयुगविधुतिथौ स्तादिहानन्ददाता ॥ ९ ॥

श्री–शान्तिजिन–स्तुत्यष्टकम्

(मन्दाक्रान्ता)

स्वस्ति श्रीमानखिलभुवनोद्भासनज्ञानभानु,-
र्दिव्यानन्तोदितगुणगणाप्रत्नसद्रत्नसानुः ।

संसारेऽस्मिन् बहुतरभवोद्भूतपीडाप्रचण्डे,
शान्ति शान्तेश्चिरमधिपति शान्तिनाथो विदध्यात् ॥१॥

यस्मिन् गर्भे समवतरति प्रौढपुण्यप्रभावा-,
ज्ञात विश्वं व्यपगतगद मारिपीडासनीडम् ।
देवै सेव्यो गजपुरवराधीशितुर्विश्वसेन,-
पुत्रश्चित्रं स खलु विजयी विश्वसेन विजिग्ये ॥ २ ॥

अप्याश्चर्यं श्रित इह नतैर्यो मृगाङ्को महेशै,-
र्दोषोन्मोषी क्षतिविरहितस्तारकेशो विशेष ।
भूत्यै राजा भवतु जगतां निष्कलङ्कस्तमोभित्,
सोमश्छायासृदपि भुवने नोपरागोपलिङ्गी ॥ ३ ॥

यो नो भास्वानपि खरकर किन्तु य पद्मपाणि,
यस्माज्जात समनयमथो वै कृतान्तो गतान्त ।
योऽल शान्तो विदलिततमो यश्च सच्चक्रबन्धु-
स्तापोच्छित्त्यै भवतु भगवान् स प्रशस्तप्रताप ॥ ४ ॥

औदासीन्यं विपयविपये यत्पदध्यानलीनो,
नात्मारामे विलसति दधद्दिव्यतेजोऽभिराम. ।
रागद्वेषौ प्रतिहतबलावान्तरङ्गारिमुख्यौ,-
तस्मै किञ्चिन्नयमिह भवे दातुमीशो न जातु ॥ ५ ॥

दन्दह्यन्ते भुवनविजये जायमाने निकाम,
कामे वामेऽसुरनरसुरा भोगरोगाभिभूता ।
जायन्ते ते पद्मलपदाम्भोजसेवासुधाब्धौ,
मग्ना लग्ना निरुपमपदा शाश्वतानन्दसान्द्रा ॥ ६ ॥

गोत्रद्वेषि प्रहरणनिभे गोत्रकर्मान्तकर्तु,
पादद्वन्द्वे प्रचलति सता चाङ्गिना ध्यानदम्भात् ।

नित्यं चित्ते स खलु भजतेऽनादिकालोद्भवोऽपि,
स्वस्थेऽमानं कथमिपिमहामोहगोत्रो नु गात्रे ॥ ७ ॥

सम्प्राप्तं यच्चरणकमलोपासनाभिः प्रभाभि,-
र्ज्योतीरूपं सहजसुभगं सच्चिदानन्दपूर्णम् ।
भव्यैर्भव्यैः स खलु भगवान् वीतरागो जिनेशः,
शान्तिर्भ्रान्ति भवभवभवां भेदयँच्छान्तये स्तात् ॥ ८ ॥

(शार्दूलविक्रीडितम्)

इत्थं शान्तिजिनेश्वरं नतसुरं ये संस्तुवन्ति प्रगे,
श्रीमन्तः सुखसागरास्सुभगवन्तः श्रीहरिपूजिताः ।
सन्तस्तेऽस्तरजस्तमाश्च भुवने स्वस्तिश्रिया शालिनः,
क्रीडन्त्येव "कवीन्द्र"केलिसदने निश्छद्मभावान्विताः ॥९॥

श्री-शान्तिनाथ-जिन-स्तुत्यष्टकम्

(वंशस्थ-वृत्तम्)

सुतात्त्विकीं शान्तिमपायवर्जितां,
समर्जितात्यन्तगुणप्रवर्धिताम् ।
यथास्थितां सिद्धिगतिस्थितिस्पृजां;
स शान्तिनाथः प्रददातु वः प्रभुः ॥ १ ॥

पुराभवे यस्य दयालुतागुणं,
ह्यभूतपूर्वं नु विलोक्य पर्षदि ।
शिरःप्रकम्पं जनयन् सुरेश्वरो,
नुनाव चित्रीकृतस्वर्गसत्सभः ॥ २ ॥

परीक्षितुं वज्रिवचः समागतौ,
कपोतक स्येन तयाऽतिमायिनौ ।

सुरौ पुरो भक्षक-भक्ष्यताङ्कतौ,
सुरक्षितौ येन निजाङ्गजाङ्गलै ॥ ३ ॥

परीक्षणोत्तीर्णमुदीक्ष्य तौ सुरा-
वहो महासत्त्व ! जयेति प्रोचतु ।
यथोदितस्तेन बिडौजसा तथा,
समीक्षित सत्यतयासि साम्प्रतम् ॥ ४ ॥

अथैककाल पदवीद्वय समा-
ददे मुदे य खलु भारते पुरा ।
स विश्वसेनावनिपालनन्दनोऽ-
स्तु चक्रवर्ती व्यवहारधर्मयो. ॥ ५ ॥

दिनेशवत्साम्प्रतमं तमोभर,
प्रणाशयन्भव्यजनप्रबोधक' ।
सुपञ्चत्रिंशद्गुणपूर्णया गिरा,
चकार नैकान्तमतप्रवर्तनम् ॥ ६ ॥

दिदेश धर्मं व्यवहारनिश्चया-
न्वय पर द्वादशपर्षदां कृते ।
विहारकाले नवकाञ्चनोत्पले,
क्रमौ दधे यश्च दिवौकसा कृते ॥ ७ ॥

अपारसंसारचतुर्विधाध्वन ,
प्ररोधकं धर्ममथो चतुर्विधम् ।
विधाय सङ्घ सुचतुर्विध सदा,
प्रबोधयामास शिवश्रियेऽस्तु स ॥ ८ ॥

(शार्दूलविक्रीडितम्)

इत्थं शान्तिजिनेश्वरोऽमरनरश्रेणिस्तुतः संस्तुतः,
श्रीमन्तं सुखसागरं हि भगवन्तं श्रीहरीड्यं कविम् ।
कुर्वन्स्त्रस्तिरमाविलासविशदे स्वाध्यात्मसौख्यान्विते,
भव्यं भव्यकवीन्द्रकेलिसद्ने संस्थापयत्याशु वै ॥ ९ ॥

श्री नेमिनाथजिन-स्तुतिः

(भुजङ्गप्रयात-वृत्तम्)

शिवश्रीर्यमीशं "भुजङ्गप्रयातं",
प्रियावीतरागं सरागं निजाङ्के ।
विलोक्याशु लोकोत्तरं सद्विलासैः,
शिवानन्दनं प्रीणयामास सोऽव्यात् ॥ १ ॥

जगद्वाञ्छितार्थप्रदानक्षमोऽयं,
तदाधारभूतो भवामीह तद्वत् ।
किमित्थं विचार्यैव यत्पादपद्मं,
श्रितः शङ्ख एषः स पूयाज्जिनेशः ॥ २ ॥

जयन्त्युज्जयन्ताचलाचूलमूले,
क्रमश्रेणयो यत्प्रभो राजमानाः ।
सुराधीशविस्तारिताम्भोजरम्या,
विहारप्रचारैः सुभव्याधिगम्याः ॥ ३ ॥

यदेकाङ्घ्रिप्रेम्णा न वै कार्यसिद्धि,-
रिति प्राकृतोक्तिं वृथा कुर्वतीव ।
सुराजीमती यं प्रियं वीतरागं,
समाश्रित्य प्रेम्णा ललावात्मसिद्धिम् ॥ ४ ॥

विरागोल्लसद्भावनाभाविताना,
भवानन्तदु खक्षयायोद्यतानाम् ।
दवीयस्तर नो पद प्राणभाजा,
परब्रह्मणो ब्रह्मभर्तु प्रसादात् ॥ ५ ॥

महामोहसमोहितात्मस्वरूप,
स्वरूप यदीय समीक्ष्येक्षणीयम् ।
स भव्य समाप्नोत्यजात्वाभिमानी,
स सिहस्वरूप यथा सिहबाल ॥ ६ ॥

स्वभावापहारप्रधान गरेषु,
ममत्वोग्रहालाहल हेलयैव ।
प्रभोर्निर्ममारिष्टनेमे सुधावत्,
कृत दर्शन भ्रशयत्येव सम्यक् ॥ ७ ॥

अनन्तानुबन्धादिभेदप्रचण्डो,
ज्वलज्ज्वालजिह्वाभक्रोध प्रवृद्ध
जनाञ्ज्वालयत्येव तावन्न यावत्
स तै पुष्कगावर्तनेमि श्रितोऽभूत् ॥ ८ ॥

भजेत् तावदेवोद्धुरै कन्धरै स्व
स्थिति सर्वथा सर्वगर्वाचलोऽपि
न यावज्जिनाधीशनेमे सदद्रिघ्र
नयाभीशुवज्र समुल्लासि चित्ते ॥ ९ ॥

सुख शेरते तावदेते पुमासोऽ
तिमाया लतामण्डपे, चण्डदु खे ।
स यावज्जितारिष्टनेमेस्तमोमित्
स्फुरद्बोधभानुर्मनो नाभ्युदेति ॥ १० ॥

भृशं वर्द्धतां चित्तभूमौ जनानां,
सुवर्द्धिष्णुवृत्तिः स लोभाम्बुराशिः ।
न सोऽगस्तियोगीश्वरो नेमिनाथः,
सनाथां करोतीति तां तावदेव ॥ ११ ॥

(शार्दूलविक्रीडितम्)

इत्थं श्रीसुखसागरं सुभगवन्तं तं हरेः पूजितं,
श्रीमन्नेमिजिनेश्वरं यतिपतिं ब्रह्माधिनाथं मुदा ।
भक्त्या भव्यजनाः स्तुवन्ति सततं स्वस्तिश्रियामानिशं,
ते क्रीडन्ति "कवीन्द्र" केलिसदने स्वातन्त्र्यभावोद्धुराः ॥१२॥

नेमिनाथजिनस्तुत्यष्टकम्

(द्रुतविलम्बित-वृत्तम्)

जिगमिषुः परमात्मपदं गता-
पदमलङ्कृतमात्मशिवश्रिया ।
यदुकुलाम्बुधिचन्द्रमसः पदं,
प्रतिपदं प्रणमामि ससम्पदम् ॥ १ ॥

पशुविनाशविधानसमुद्भव-
न्निजविवाहमपि स्वजनाग्रहम् ।
ग्रहमिवाशु निजस्य समुत्यजन् ,
कृतत्रिविक्रमचित्रसुविक्रमः ॥ २ ॥

सुगिरिनारगिरौ विदधे पर-
न्तपतपः प्रबलं धृतसंयमः ।
न हि यमोऽलमभूत्स ततो निजे-,
प्सितचिकीर्षुरथो जिननेमये ॥ ३ ॥

कृतसुरासुरनायकशासन,
तद्बलाबलशालिमनोभुव ।
विपयविस्तृतराज्यमपि ध्रुवं,
लघु विजित्य स नेमिजिनो जयी ॥ ४ ॥

खरतरेन्द्रियसायकनायकं,
निजविरोधिबलोदधिमन्थनम् ।
विततविभ्रमसम्भ्रमितद्विपं,
प्रतिजघान झपध्वजविद्विपम् ॥ ५ ॥

स्वसमितौ विनयावनतात्मना,
नयमयं समय समुवाद य ।
विविधधर्मसमाश्रितवस्तुनो,
विविधरीतिलया प्रतिपादकः ॥ ६ ॥

जगति नेमिजिनाधिपबोधितो,
गुणयुतोऽभिमतः खलु योगिनाम् ।
खलवोऽपि लय ददतेऽमित,
ह्यपि स आत्मविदे अचिना भवेत् ॥ ७ ॥

समुदिते विभुनेमिजिनेशितु,
स्मरणमन्त्रहरौ हृदये बलाद् ।
झटिति वै ममतारजनीं जनो,
नयति सन्तमसा जननीं क्षतिम् ॥ ८ ॥

(शार्दूलविक्रीडितम्)

इत्थ नेमिजिन स्तुवन्ति सतत भव्या सुभक्त्या प्रगे,
ते लोके सुखसागरा सुभगवत्त्वोल्लासिनीश्रीमया ।
पूजार्हा हरिसागराप्तविभवा स्वस्तिश्रियामाश्रित,
क्रीडन्त्येव ' कवीन्द्र" केलिसदने स्वातन्त्र्यभाजश्चिरम् ॥ ९ ॥

श्री-पार्श्वनाथ-जिन-स्तोत्रम्

(रथोद्धता)

श्रीमयं सुयशसां निकेतनम्,
भव्यजन्तु-हतमीन-केतनम् ।
भक्तदेवपति-भक्तिपूजितं,
तत् प्रणम्य जिनपार्श्वपत्कजम् ॥ १ ॥

हास्यधाम सुधियामपीह वै,
बालिशेषु मुकुटः स्तवीम्यहम् ।
पार्श्वपार्श्वजिनपार्श्वपत्कजं,
ध्यानलीनमनसेति भावयन् ॥ २ ॥

प्रातरर्कशरणस्तमोऽभिदे,
नारुणोऽपि किमलं भवेदिह ।
किं कुवर्णमपि लोहमेति नो,
स्पर्शरत्नयुगलं सुवर्णताम् ॥ ३ ॥

तत्पदैकशरणोऽपि तन्नुतौ,
तद्वदेव किमलं भवामि नो ।
पार्श्वनाममहिमैव वर्तते,
तत्करोमि गुणवर्णनं नयम् ॥ ४ ॥

यो विनैव कमठं शठं क्रुधं,
निर्बलं च विदधे जगत्पतिः ।
दोषलेशरहितो हिताय वोऽ-
नश्वराय भवताद् भवार्त्तिभित् ॥ ५ ॥

यो नतेऽपि किल नागनायके,
द्वेपिणीति कमठे तथैव च ।

वीतरागपदवीं परां गतः,
रागरोगहरणाय सोऽस्तु व ॥ ६ ॥

यद्वचोऽमृतमहो निपीय वै,
भोग्यपीह खलु योगिता श्रित ।
दाहजन्यमपि दु खमुत्यजन्
नागनाथपदवीं जगाम च ॥ ७ ॥

क्रोधवह्निनिर्वाणसाधनो,
गर्वपर्वतवितानबाधन ।
लोभसागरविशोषणप्रभो,
दम्भकुम्भिकदर्सिंहसन्निभ ॥ ८ ॥

तैलपर्णिकरसेन नो चन्दनो,
क्षीरसागरविशिष्टवेलया ,
ज्योत्स्नया न जलधारया ज्वरो,
नाशमेति स हि यस्य दर्शनात् ॥ ९ ॥

प्राज्यराज्यमपि यो दरिद्रिणां,
द्रव्यभावयुगकोटिसंस्कृतम् ।
वाञ्छितार्थघटनापटु सता,
दुर्गतोऽपि ददते वहिद शाम् ॥ १० ॥

(शार्दूलविक्रीडितम्)

इत्थ ये प्रकटप्रभावयशसा लोकेषु वै विश्रुत,
ध्यायन्ते त्रिविधाभिधानविशद श्री पार्श्वनाथ जना ।
स्वातन्त्र्ये सुखसागराब्धि भगवद्भक्त्या हरे सदृशा ,
क्रीडन्त्येव "कवीन्द्र" केलिसदने स्वस्तिश्रियाहर्निशम् ॥ ११ ॥

श्री पार्श्वजिनस्तोत्रम्

(काशीतीर्थमहिमा)

ॐ अर्हं पार्श्वं पार्श्वेशं, पार्श्वं पार्श्वे परं महः,
यज्जन्मपावनं काशी-तीर्थञ्च समुपास्महे ॥ १ ॥

रङ्गद्गाङ्गतरङ्गाङ्कि-वैशद्यं रमणीयकम् ।
रामघाटमहाघाटे ,ऽस्ति यत्तद्वागगोचरम् ॥ २ ॥

श्रीपार्श्वकल्याणकतीर्थभूमौ,
कल्याणमूलं जिनधर्मशाखी ।
सत्पक्षिसङ्घेन विराजितश्चा-
मरद्रुमाधिक्यपदं पुराऽभूत् ॥ ३ ॥

विरोधिरौद्रप्रकृतिप्रधानैः,
कालादिदोषैश्च स हीयमानः ।
सुरक्षितः श्रीजिनलाभसूरि-
शिष्यप्रशिष्यैर्गुणयोगसिद्धैः ॥ ४ ॥

श्रीहीरधर्मो जिनधर्मनेता,
तच्छिष्यवर्यः कुशलादिचन्द्रः ।
वादि-प्रवादि-प्रतिवादिजेता,
स्वयंवरा यस्य जयश्रियः स्युः ॥ ५ ॥

काशीपुराधीश्वरपूज्यपादः,
काश्मीरराजेन समर्चितात्मा ।
नेपालभूपालकमान्यमान्यः,
सोऽयं प्रजीयात् कुशलादिचन्द्रः ॥ ६ ॥

येन प्रभावपूर्णेना-, रोपि जैनजयध्वजः ।
गङ्गातीरे रामघाटे, जिनचैत्यनिरुपणात् ॥७॥

यस्मिश्चिन्तामणिश्चिन्ता -चूरणे फलपूरणे ।
भूयात् फणिफणारत्न राजि-च्चिन्तामणिप्रभु ॥८॥

श्री-पद्मावतीदेवी-स्तुतिः

(शार्दूलविक्रीडितम्)

ॐ पद्मे ! जननि ! प्रभूतमहिमाधारे ! महाशक्तिदे !,
श्री-पार्श्वेश्वर-पादपङ्कजरते ! भक्तैकरक्षापरे ! ।
ॐ क्रौं ह्रीं पदशालिनि ! त्रिभुवनत्राणोद्यते ! सन्मते !
प्रारिष्ठ्योपहत श्रिया विरहित भक्त्यानत पाहि माम् ॥ १ ॥

पातालेश्वरनागनाथहृदयालङ्कारभूते वरे !,
हे देवि ! त्रिपुरे ! त्रिनेत्रललिते ! मान्ये ! मनोज्ञालिके ! ।
माङ्गल्यैकनिधे ! प्रधानवरदे ! मात ! प्रभापूरिते !,
श्रीपद्मे परमोपकाररसिके ! भक्त्यानत पाहि माम् ॥ २ ॥

विश्वव्यापियशोभरेण भवती विश्वेश्वरी राजते,
श्रीदे ! श्रीललने ! ललामकमले ! कान्ते ! कलाकामदे ! ।
ऍकारस्वरसाधनोत्तममहामन्त्रस्वरूपे ! शुभे !,
दौर्गत्य अपहृत्य मेऽम्ब ! सतत-भक्त्यानत पाहि माम् ॥ ३ ॥

चिद्रूपे ! चतुरे ! चतुर्मुखि ! महामाये ! चिदानन्ददे !,
चञ्चच्चक्रविराजिते ! ज्वरहरे ! दुर्गे सुमार्गाश्रिते ! ।
पापापायविनाशनप्रगुणितप्रौढप्रतापोद्धुरे !
क्लीं ब्लूंदुष्टजनान् ममाशु हन हे चण्डि ! प्रचण्डक्रिये ॥ ४ ॥

ज्योतीरूपधरे ! जयन्ति ! जगदाधारे ! जये ज्वालिनि !,
योगाङ्केडुयुगादिजे यतिजनध्येयस्वरूपे ! शिवे ! ।
ह्रां ह्रीं ह्रूं विशदे विशिष्टवसुदे ! मातामहीडेश्वरि !,
मात पद्मिनि ! पुण्यशालिसुलभे ! भक्त्यानत पाहि माम् ॥५॥

श्री-आदिनाथ-जिन-स्तवनम्

(गजलरागेण गीयते)

स्वस्तिश्रियः शरण्यं, कारुण्यवासपुण्यम् ।
सम्यग्गुणैरगण्यं, वृषभध्वजं भजामि ॥ १ ॥

नवशारदेन्दुरम्यं, यस्यास्यमस्ति सौम्यम् ।
सम्यग्दृशां प्रकाम्यं, वृषभध्वजं भजामि ॥ २ ॥

जगति प्रभावपीनं, स्वात्मस्वभावलीनम् ।
हृतभव्यभवनदीनं, वृषभध्वजं भजामि ॥ ३ ॥

अपनीतदोषदिव्यं, सुरराजसाधुसेव्यम् ।
ध्यानात्मभावनेयं, वृषभध्वजं भजामि ॥ ४ ॥

विमलस्वभावभव्यं, भव्येतरैरभाव्यम् ।
भव्यात्मदत्तभव्यं, वृषभध्वजं भजामि ॥ ५ ॥

शत्रुञ्जयावतंसं, शत्रुञ्जयावृतंसम् ।
कृतकर्मवंशहिंसं, वृषभध्वजं भजामि ॥ ६ ॥

सुखसागरं महान्तं, भगवत्प्रकामकान्तम् ।
कृतकामकान्तशान्तं, वृषभध्वजं भजामि ॥ ७ ॥

लोके हरिं हरन्तं, नित्यं तमः समस्तम् ।
स्फीतं "कवीन्द्र" गीतं, वृषभध्वजं भजामि ॥ ८ ॥

श्री-तारङ्गतीर्थस्थ-अजित-जिन-स्तवनम्

(गजलरागेण गीयते)

स्वस्तिश्रियां निधानं, तारङ्गतीर्थराजम् ।
गजराजराजिताङ्गं, वन्देऽजितं जिनं तम् ॥ १ ॥

निहताखिलारिवर्गं, समधिष्ठितापवर्गम् ।
अजित द्विधापि भुवने, वन्देऽजित जिन तम् ॥ २ ॥

बहिरात्मतामपास्या-भ्यसितान्तरात्मभाव ।
परमात्मतोपगन्ता, वन्देऽजित जित जिन तम् ॥ ३ ॥

शुद्धो मलेन हीन, सम्यग्गुणाभिराम ।
तीर्थाधिपश्रियेद्धो, वन्देऽजित जिन तम् ॥ ४ ॥

भव्यो भवेद्यदङ्घ्रि-कमलावलीनचेता ।
घनमोहबन्धमुक्तो, वन्देऽजित जिन तम् ॥ ५ ॥

अज्ञानवारिराशौ, प्रपतज्जनावलीनाम् ।
विदधाति रक्षण यो, वन्देऽजित जिन तम् ॥ ६ ॥

त्रिविध सुद्रव्यरूप, ज्ञात्वा यदुक्तमुच्चै ।
स्याद्धि जगत्सुबोध, वन्देऽजित जिन तम् ॥ ७ ॥

सुरमागरश्च भगवान्, हरिपूजित, परेश, ।
नित्य "कवीन्द्र" वद्यो,-वन्देऽजित जिन तम् ॥ ८ ॥

श्री-शान्तिनाथ-जिन-स्तवनम्

(गज्जलरागेण गीयते)

यत्पादपद्मभक्ते, कर्तारमाश्रयन्ते ।
स्वर्गापवर्गलक्ष्म्यो, जीयात् स शान्तिनाथ ॥ १ ॥

भव्या सरूपभव्या, गतकल्मषा भवन्ति ।
यद्भक्तिगाङ्गपूरे, जीयात् स शान्तिनाथ ॥ २ ॥

यद्भक्तिकल्पवल्ली, दत्तेऽतुल फल तत् ।
बहिरात्मनामगम्य, जीयात स शान्तिनाथ ॥ ३ ॥

यदतुच्छभक्तिपद्मे, मकरन्दमिष्टमिष्टम् ।
भव्यालयः पिबन्ति, जीयात् स शान्तिनाथ ॥ ४ ॥

आरुह्य वन्धमुक्तां, यद्भक्तिनावमुच्चैः ।
भवसागरं तरन्ति, जीयात् स शान्तिनाथः ॥ ५ ॥

यदनात्मभावमायां, वल्लीवितानमैत्री ।
यद्भक्तिकर्त्तरीयं, जीयात् स शान्तिनाथः ॥ ६ ॥

कर्मावलीविलुप्तं, प्रकटीकरोति बोधम् ।
यद्भक्तिदीपिकालं, जीयात् स शान्तिनाथः ॥ ७ ॥

सुखसागरश्च भगवान्, पूज्यो हरिः कविस्स्यात् ।
यद्भक्तिरक्तचेताः, जीयात् स शान्तिनाथः ॥ ८ ॥

श्री-पार्श्व-जिन-स्तवनम्

शृणु पार्श्वप्रभोऽहं कुर्वे विनयनतः प्रार्थनाम् ॥
त्वमसि प्रभुवर भवोदधितारक, इह मां तारय तारय ।
कर्मवलेन सदास्मि सुपीडित, इति तन्मे लघु वारय हे ॥१॥

त्वया तदा विषधरयुगलं हे, नाघातारि विचारय ।
विषरहितोऽप्येकस्मिनकष्टं, भविता तन्मां तारय हे ॥ २ ॥

महाहठं शठकमठमभक्तं, चक्रे दर्शनयोग्यम् ।
हठशठरहितोऽस्मि सुभक्तो, मां कारय तद्योग्यम् हे ॥ ३ ॥

मयि प्रभो चेद्भवानुप्रेक्षा, वरां भविष्यति बाढम् ।
भवतो हन्त विवेकोर्त्तीर्णं, लोकोऽगास्यद् गाढम् हे ॥ ४ ॥

सुखसिन्धुर्भगवानसिपूज्यो, हरिभिस्सर्वेशसचम् ।
हृद्गतभावं भावय याचे, सेवाया पूर्णत्वम् हे ॥ ५ ॥

श्री-पार्श्व-जिन-स्तवनम्

श्रीवामेयममेयफलदातार वन्दे,
देवाधिदेवमर्हन्तमरिहतार वन्दे ॥
अश्वसेनमहाराजसुविपुलकुलकमले य
कमलाकरो भास्वान् तमह भक्त्या वन्दे ॥ १ ॥

कमठकुयोगीप्रयोग-दग्ध नागयुग य ।
चक्रेऽन्वाजेकृत्य दिव्य तमह वन्दे ॥ २ ॥

कमठकृते महाघोर-जलाजन्ये जेता ।
आत्मध्यानमुरसिकृत्य यस्त वन्य वन्दे ॥ ३ ॥

देवाधिदेवो वीतराग इह यो नानाभावै ।
ध्यायमान उपमान-रहितस्तमह वन्दे ॥ ४ ॥

शाश्वतसुखसरस्तान्यो भगवान्हरिपूज्य ।
योगादश्रुकभावना मस्तमह वन्दे ॥ ५ ॥

गुरु-गुण-विभागः

श्री-मज्जिनदत्तसूरीश्वर-षट्त्रिंशिका

(शार्दूलविक्रीडितम्)

सत्कीर्तेस्सदन क्षपाङ्ककदनं मुक्त्यध्वनि स्यन्दन,
विस्तीण भवकानने भयहर शस्त शुभाऽऽलम्बनम् ।
भक्तानामघभेदन च निशदश्रेय श्रियो भाजन,
स्याद् भूत्यैकनिबन्धन शुभगुरो पादाम्बुजाऽऽसेवनम् ॥ १ ॥

आसीत् स्वस्तिरमाविलासभवने क्षेत्राग्रिमे भारते,
तीर्थश्रीविमलाद्रिरैवतगिरिभ्यामञ्चितः पावनः ।
सौराष्ट्रोऽत्र तमालपत्रसदृशं क्षान्ता सुकान्ताऽऽनने,
धोलक्काभिधपत्तनं स्वरमया लङ्काऽलकाजिन्वरम् ॥ २ ॥

तस्मिन् हुम्बडगोत्रभाक् सुसचिवः श्रीवाछिगाख्योऽजनि,
जीवाजीवविचारचिन्तनसुधीर्जैनेन्द्रधर्मे रतः ।
त्वर्या वाहडदेव्युदारचरिता शीलश्रियाऽलङ्कृता,
पाथोधेरमरापगेव समभूत्तस्यैव प्राणप्रिया ॥ ३ ॥

ताभ्यां तत्कुलपुष्करेऽम्बुजकरः सच्चक्रदृग्ध्वान्तहा,
विश्वं विश्वमसौ गवां गणधरो हुद्ररतुकामस्तदा ।
उच्चस्थागगते ग्रहे भुवन दृग् रुद्रेऽब्दके वैक्रमे—
सोमेन्दुर्गुणतस्तथा स्वभिधया बाल्येऽपि धीमानभूत् ॥ ४ ॥

जैनाज्ञाविधिपावकः खरतरस्वच्छक्रियापालकः,
यः श्रीमान् वरवाचकोत्तमविभुः श्रीधर्मदेवाभिधः ।
अत्राथो स्वपदाम्बुजैर्वसुमतीं वै पावयन्तागमन्,
तच्छ्रुत्वाऽच्छतरां गिरं भवनदीशे पोतप्रख्यां पराम् ॥ ५ ॥

पुत्रप्रेमविमोहितौ स्वपितरौ भक्त्योपदेशेन स,
सन्तोष्य प्रणतिं विधाय सुमनास्संवेगरङ्गाङ्कितः ।
द्राग् लात्वाऽनुमतिं तयोर्गुरुवरं नत्वा सुशिक्षान्वितां,
पाथेयप्रतिमां महोदयपथे दीक्षां सुभिक्षां ललौ ॥ ६ ॥

भूवेदावनिचन्द्रमानकलिते श्री वैक्रमे वत्सरे,
वैयावृत्यमसौ गुरोः प्रकलयन् ज्ञानी मुमुक्षूत्तमः ।
प्रज्ञाक्षान्तिदयाधृतिप्रभृतिभिर्वर्यैस्समालङ्कृतः,
साधुत्वेऽपि सुविश्रुतोऽवनितले सोमेन्दुरित्याह्वया ॥ ७ ॥

स्याद्वादाम्बुधिपाग्नो निधिरसश्रीकण्ठमानाब्दके,
वैशाखाऽसितपक्षके रसतिथौ श्री चित्रकूटे पुरे,
सूरेर्मन्त्रमवाप्य सूरिमुकुटाच्छ्रीदेवभद्राद्‌ग्भो,
पट्टे श्री जिनवल्लभस्य सुगुरो पूर्वाचलेऽर्को यथा ॥ ८ ॥

गोप पद्मकरो महोभिरमलैः सच्चकबन्धु स हि,
नाम्ना श्रीजिनदत्तसूरिरखिले विश्वेऽभवत् ख्यातिभाक् ।
वज्रस्तम्भगत तदेव नगरे श्री चित्रकूटाभिधे,
मन्त्राम्नायमय सुपुस्तकमय मन्त्रेण जग्राह च ॥ ९ ॥

सोऽन्येद्य रचयन् पवित्रमखिल पादै स्वकैरर्कवत्,
विश्व तामसभूतिहा प्रकटयन् धर्मं स्रवन्तीं पुरीम् ।
आपेदे खलु निष्कलेनतरणेर्मन्त्रान्वित पुस्तक,
स्तम्भस्थ स्थगितप्रतापतपन रम्य महाकालगम् ॥ १० ॥

अस्यामेव गुरावथोऽपदिशति व्याख्यानमुद्बोधद,
योगिन्यो युगपद् गुरु छलयितु ता आययुश्छद्मना ।
श्राद्धीरूपमहो वि राग विमल! वेदर्त्तुमाना यदा
तास्तस्तम्भ सुमन्त्रयोगविधिनाऽसौ ज्ञातपूर्वागुरु ॥ ११ ।

नोत्थातु समलम्बभूवुरखिला दीना वराकास्तदा,
प्रोचुर्मुञ्च दया विधेहि भवता श्रीमन्नहा ! स्तम्भिता ।
जल्पन्ती प्रमुमोच ता स विनयानम्रास्सुभक्त्या ददु-,
रस्मै सप्तकमञ्जसाऽममकृते वयं वराणामद ॥ १२ ॥

देविष्यन्ति सदा तव प्रतिपुर ये भक्तिभाजो जना,
प्राय कुवचनोऽपि नो खरतरा निःस्वा भविष्यन्ति च ।
सद्वे कुत्सितमृत्युरप्ययि गुरो ! भावी न ते सर्वथा,
दस्यार्या नासदा सुशीलममल या शीलयन्ति प्रभो ! ॥ १३ ॥

शाकिन्यादय एव तान् खरतरान् नो वै छलिष्यन्ति च,
शम्पाया जिनदत्तनाम्नि पठिते पातो न भावी तथा ।
श्रीमन्तः किल सन्तु ते खरतराः ये सिन्धुदेशे गताः,
स्वस्थानं प्रगताः समर्प्य गुरवेऽदस्सप्तकं तास्ततः ॥ १४ ॥

अन्येद्युर्यतिवृन्दवन्दितपदैर्द्रङ्गेऽजमेरावथो,
कुर्वद्भिर्गुरुभिश्च पाक्षिकषडावश्यक्रियां वेगतः ।
विद्युत्पातमवेक्ष्य मन्त्रविधिना क्षिप्ता स्वपात्रे च सा,
त्वद्भक्ते प्रददौ वरं नहि पतिष्यामीति निष्काशिता ॥ १५ ॥

तत्पश्चादथ वृद्धपत्तनमसावेयाय सूरिस्तदा,
दृष्ट्वा जैनमतोन्नतिं हि पिशुना ईर्ष्यालवो वाडवाः ।
तत्रत्याः खलु छद्मना विमुमुचुर्जैनालये प्रेतगां,
श्राद्धैर्ज्ञातगुरुस्सुमन्त्रविधिना सज्जीचकाराशु ताम् ॥ १६ ॥

साऽपि व्यन्तरयोगतो जिनगृहादुत्थाय शैवालयं,
वव्राजाथ शिवोपरि प्रपतिता शैवा ह्रिया दुःखिताः ।
भक्त्यैनं कथयान्ति ते स भगवन् प्रेष्यन्ति ये सूरयः,
शिष्याश्चेत्तव तर्हि अत्रहि करिष्यामो वयं सूत्सवम् ॥ १७ ॥

अत्रेत्थं प्रविधाय धर्ममहिमानं सूच्चसंज्ञं पुरं,
पूज्यश्रीमुनिसुव्रताऽप्तचरणाम्भोजैः पवित्रीकृतम् ।
भव्याम्भोजविबोधयन् महीतलं गोभिर्गुरुः प्राययौ,
पुत्रं तन्नगरेश्वरस्य मुगलस्याश्वान् मृतं भूपतेः ॥ १८ ॥

तस्याऽभ्यर्थनया चकार मृतकं तं व्यन्तरेणाथ स,
आषण्मासमयं जवाद् गुरुवरो ह्युक्तेति जीवान्वितम् ।
मद्य मांसमभक्षणीयमखिलं देयं न चास्मै त्वया,
इत्थं जैनमतोन्नतिं प्रकलयन्नानञ्ज सत्पत्तनम् ॥ १९ ॥

कालेऽस्मिन्गिरिनारशैलशिखरे श्राद्धोऽम्बडाख्यो महा–
देव्यम्बा तपसा च योगविधिना भक्त्या प्रमेजे मुदा ।
प्रत्यक्षीसमभूच्च सा ह्यचकथत् किं कारण मत्स्मृतौ,
तां बद्धाञ्जलिरम्ब[1] अत्र भरते कोऽल युगाग्र्योऽस्ति वै ॥२०॥

तर्ह्यम्बा लिपिमालिलेख विमला हस्तेऽस्य भक्तस्य च,
प्रागादीद्वसुधातले बुधवरास्तान् दर्शय द्रागमूम् ।
पाठीभाव्यधुना स यो युगवर• विश्वे मनुष्यात्मनाऽ–,
नेनाते भ्रमतापि कोऽपि कुतले तद् वाचको नेक्षित ॥ २१ ॥

आगात्सोऽथ च पत्तन गुरुवर श्रुत्वैव भक्ताग्रणी,
सिद्ध सूरिशिरोमणि सुयशसा सन्तर्जिताहर्मणिम् ।
नत्वा तेन निदर्शिता सुगुरवे निक्षिप्य वास तत,
शिष्येणेति[1] सुवर्णवर्णितलिपिं प्रध्यापयामास स ॥ २२ ॥

वीक्ष्यैन च युगप्रधानममरैर्च्यं स सद्भक्तिमान्,
श्राद्धोऽभूदथ अन्यदा युगवर प्राज्यै प्रवेशोत्सवै ।
आगाच्छ्रीमुलतानसञ्ज्ञकपुर तर्हीह, वै केनचिद्,
आ ! श्राद्धाम्बडसञ्ज्ञकेन कथित श्री सूरये मानिना ॥ २३ ॥

इत्थं चेदणहिल्लपाटकपुर प्रायास्यसि त्व यदा,
मेनेऽल अथ त जगाद मुनिप श्रुत्वोद्धता वाक्ततीम् ।
आयास्यामि तदा मिलिष्यसि च मा त्वं दुर्विधस्तत्र वै,
इत्येव दिवसै कियद्भिरगमत् सत्पत्तन सोत्सवे ॥ २४ ॥

प्राप्तस्सोऽम्बडदुर्विधोऽपि सहसा जाते प्रवेशोत्सवे,
ज्ञात्वा तेन तदा स शब्दित इतो द्वेष वहन् तद्गुरो ।

---

१ दासानुदासा इव सर्वदेवा, यदीयपादाब्जतले लुठन्ति ।
मरुस्थलीकल्पतरु स जीयाद् युगप्रधानो जिनदत्तसूरि ॥

कुर्वन् भक्तिमसौ सुदम्भविधिना क्ष्वेडं ददौ पानके,
पीतं तेन ततोऽञ्जसा सुगुरुणा ज्ञातं तदाभूरिति ॥ २५ ॥

श्राद्धः प्राह्लणपत्तनाद् विपहरां मुद्रां समानीतवान्,
जाते तर्हि स निर्विषे गुरुवरे लोके प्रणिन्धोऽभवत् ।
मृत्वा व्यन्तरको गुरुं छलयितुं छिद्राणि पश्यत्यसौ,
अन्येद्युश्च गुरो रजोहरमथो प्राचूचुरन्मायया ॥ २६ ॥

व्यग्रं वीक्ष्य करोति यावदभितस्तद्व्यन्तरोक्त्यात्मना-,
आभूस्स्वीयकुटुम्बढौकनमहो तस्मै सुभक्त्या गुरोः ।
तावद् व्यन्तरचेष्टितं युगवरस्सज्ज्ञो निरीक्ष्याभवद्,
व्याकृष्य स्वरजोहरं सुविधिना पायादपायाद्धि तद् ॥ २७ ॥

भग्नो व्यन्तरको यथान्धतमसं सूर्योदये भ्रंसते,
आयातिस्म गुरुश्च विक्रमपुरं मारोऽत्र भूयोऽभवत् ।
जैनानां तदुपद्रवं गुरुवरो जह्रे यदा तत्र तैः,
स्वामिन्नस्मदुपर्यसौ शुभदया कार्येति माहेश्वरैः ॥ २८ ॥

प्रोक्तं तर्हि जगाद सोऽपि दयया धध्वं सुजैनं मतं,
कुर्वे मारिविनाशमाशु भगवन् प्रोचुश्च ते ओँ तदा ।
तेषां सोऽथ अपाचकार मरकं श्राद्धानिमानञ्जसा,
साधून् पञ्चशताञ्छतान्मुनिमिता आर्याश्चकारपिराट् ॥ २९ ॥

एवं क्षत्रियब्राह्मणान्बहुविधाञ्छुद्धोपदेशामृतैः,
श्राद्धान् साधिकलक्षमानकलिताञ्जैनेन्द्रधर्मे रतान् ।
देशे पञ्चनदे सरित्सुतरणं य. करुवलेनैव च,
वर्यं पञ्चनदीशसाधनमिदं चेक्रीयते स्मामलम् ॥ ३० ॥

यः सर्वज्ञशिरोमणिर्भविजनेच्छापूरणे स्वर्मणिः,
यं ध्यायन्ति तितीर्षवो भवमहाम्भोधेश्च पूज्याग्रणीम् ।

येनोक्ताश्च दिधीर्षवो विदधते मुक्तिश्रियस्सद्विधिं,
श्रीमच्छ्रीजिनदत्तसूरिरवताद् दादाभिधानस्स च ॥ ३१ ॥

सर्वोपद्रवभेदिनेऽयि भविनो ! यस्मै कुरुध्वं नम,
यस्मान्नास्ति धरातले शमदमाढ्य कोऽपि योगीश्वर ।
यस्यानुग्रहसङ्ग्रहेण सहसा द्दोडोऽपि वेगल्भते,
श्रीमच्छ्रीजिनदत्तसूरिरवताद् दादाभिधानस्स च ॥ ३२ ॥

यस्मिन् सर्वगुणा श्रिया प्रवरया पूर्णेऽजमेरावथ,
ईशाके च सुवेक्रमे शुचिशिते पक्षेऽमुतो तिथौ ।
कृत्वा योऽनशनं गुरुस्सुप्रथमं स्वर्गंगतस्सूरिराट्,
श्रीमच्छ्रीजिनदत्तसूरिरवताद् दादाभिधानस्स च ॥ ३३ ॥

याते स्वर्गपुरे गुरावथ तदा सङ्घोऽतिशोकाकुल,
समारााम्बुधिग न रक्षितुमल नो हा ! भवन्त विना ।
कोऽप्यस्तीत्थमसु जुनाव वसुधा स्नस्सन्धिरप्यच्चित,
श्रीमच्छ्रीजिनदत्तसूरिरवताद् दादाभिधानस्स च ॥ ३४ ॥

जिज्ञासुस्सुगुरोर्गतिं स च तदा सङ्घ परीपृच्छ्यते,
जैनीं शासनदेवता विविधया भक्त्या हि सा त विभुम् ।
श्रीसीमधरसङ्घमिन्द्रमहित पृष्ट्वेति प्रोवाच त,
श्रीमच्छ्रीजिनदत्तसूरिरवतादेकावतारी स च ॥ ३५ ॥

दीनस्सम्प्रति चोऽपि सस्मरणकं तन्तन्यते चेन्द्रति,
नो दु खायत पप कर्ह्यपि समा वैरायते केन नो ।
कीर्तिर्यस्य त्रिविष्टपे महीयसी वर्वर्ति वै सर्वत,
श्रीमच्छ्रीजिनदत्तसूरिरवतादेकावतारी स च ॥ ३६ ॥

(उपजाति)

कृपां विधायाशु कृपालुभिर्मे-,
संशोधनीया सततं सुयाचे ।
वेलाकुले नाम्नि वन्दिरे च-
दादाजयन्त्यां बुधवासरेऽहम् ॥

(स्रग्धरा)

श्रीहर्यब्धौ गणेशे कृतवति रुचिरे नष्टकष्टे सुराज्ये,
काव्रीन्द्रीयं कृता वै खलु सुनिवसता वीरभक्तेन वर्या ।
सत्पूज्या श्री सुखाब्धेस्सुगुरुभगवतः दत्तसूरेस्सुवर्णा,
कान्ता लोकेभनन्दावनिमितकलिताषाढ़शुक्लेशतिथ्याम् ॥

दादाश्रीजिनदत्तसूरीश्वरस्तुत्येकादशी

(शिखरिणी—वृत्तम्)

सदा कल्याणश्रीपतिमतिसुदुष्टाशिवहरं,
मुनीशं श्रीमच्छ्रीजयदजिनदत्तं गुरुवरम् ।
अगम्यं सूरीणामपि गुणकणैः स्तौमि तरणे-
रगम्यं गम्यं किं भवति नहि दीपस्य भुवने ॥ १ ॥

प्रभो ये प्रार्चन्ते प्रणतवपुषः शुद्धमनसः,
पदाम्भोजं भक्त्या तव सुकुसुमैश्चन्दनरसैः ।
गजव्याघ्रव्यालाम्बुगददवकारागृहमृधै-
र्भयं तेषां लोके कलयति मनो नो क्वचिदपि ॥ २ ॥

महाकायः क्रोधारुणितनयनो दीर्घदशनः,
पिशन् रम्याणमान् निलयदलमाशु प्रदलयन् ।
स्वशुण्डादण्डोल्लालनजनितभीतिर्मदकलः,
पुरस्त्वद्भक्तानां ह्यति भगवन् सन्नतिजुषाम् ॥ ३ ॥

प्रकुर्वाणं क्रुद्धोद्धतविकटनादैर्गलमदं,
मदोन्मत्तेभानां यूथमथ समुत्तेजितपदं ।
स्फुरद्दन्तो लोलानलनिलयनेत्रोत्पलदलं,
मृगारिः सिंहोऽसौ मृगति भवदंह्रि प्रणमताम् ॥ ४ ॥

यमस्यादर्शो यः प्रकटितविषोल्लासिरसनो,
नयन् भस्मीभावं प्रखरनिजदृष्ट्या घनवनम् ।
महाभोगाभोगं दधदतिभयोत्पादि चपलं,
ह्यजस्रं सर्पोऽपि स्रजति पुरतस्त्वत्स्मृतिमताम् ॥ ५ ॥

तरङ्गैरुत्तुङ्गैर्जनितजनभीतिर्जलनिधि-
र्भृतश्चक्रैर्नक्रैः प्रवहणयतां रोधितगतिः ।
सदौर्वैस्सावर्तोऽनिकटतटः एष पटुधिया,
सरः क्रीडायाः स्यात्तव पदसरोजाश्रयस्रजाम् ॥ ६ ॥

ज्वरार्त्यार्ता कुष्ठैर्गलितवपुषः पामसहिता,
अकर्णा दुश्चर्मा प्रगतनयना दद्रुविधुरा ।
सुनष्टोष्ठाः कुब्जाः क्षवथुखलशोषैरपटुकाः,
प्रणंनम्यन्ते ये तव पदयुगं ते च्युतगदाः ॥ ७ ॥

ज्वलज्ज्वालोत्फुल्लः प्रचुरतरवातेरितगतिः,
किमुत्पन्नो दग्धुं जगदिति जनारेकितगतिः ।
स्फुलिङ्गैरालिङ्गी विहितबहुतापस्तनुमतां,
जलत्येषो वह्निर्गुरुजर तवोत्कीर्तनकृताम् ॥ ८ ॥

प्रबद्धा ह्यंह्रीरोत्कटतरसुकोष्ट्योरुगलिता-,
स्तिरस्कारैस्तारं प्रतिपदमलं धिक्कृततराः ।
कशाघातोद्विग्नाः पदमथ मुमूर्षोरधिगता,
गुरोर्ध्यानात् कारागृहभयविमुक्ता जनमताः ॥ ९ ॥

बभुर्यस्मिन् भीष्मा विकटभटनादैर्दशदिशः,
जजा आजौ दिव्यैः खरफलककुन्तासिशरकैः ।
प्रयुध्यन्ते तस्मिन्नरिसमुदये संनिपतिता,
जयन्त्येते भक्ताः सततमनुरक्ता गुरुपदोः ॥ १० ॥

सुखाब्धिं श्रीमन्तं मुनिपु भगवन्तं युगवरं,
हरिं गाढाज्ञानान्धतमसहरं स्तुत्यपदवीम् ।
जिनोपाह्वं दत्तं नयमयकवीन्द्रैः स्तुतपदं,
मनोवाक्कायेनादरभरभृतो नौमि सुखदम् ॥ ११ ॥

(शार्दूलविक्रीडितम्)

इत्थं ये प्रधियः सुखैषिसुजनाः स्तोत्रं पवित्रं प्रगे,
दादाश्रीजिनदत्तसूरिसुगुरोर्मन्त्राक्षरैरक्षरम् ।
दिव्यं भव्यकवीन्द्रकेलिसदनं ध्यायन्ति जातु क्वचित्,
तेषामैहिकपारलौकिकभयं नो संभवेत् सर्वथा ॥ १२ ॥

श्रीमत्क्षमाकल्याणकोपाध्यायसद्गुरुस्तुतिः

भक्तामरसमस्यालेखः [वसन्ततिलका]

भक्तामरर्षिधवधौतकलङ्कपङ्क !,
श्रीमन्महेशमुकुटाङ्कित ! हे मृगाङ्क ! ।
उल्लासकृत्सकल ! वै विमले सुखाब्धा-,
वालम्बनं भवजले पततां जनानाम् ॥ १ ॥

आबालमृत्युमपि ते शुभभक्तिप्रह्वः,
शंस्ताऽकलो महिमनि द्विसहस्रजिह्वः ।
बालोऽल्पकालिवपुषाथ तथापि भक्त्या,
स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम् ॥ २ ॥

वैयात्यभृद् विगणयन् निजबुद्धिनिन्दा,
स्तुत्याश्रिता कविकृता नु अत समुत्थ ।
स्तोतु विमुच्य मुकुरस्थ मनर्थमज्ञ-,
मन्य. क इच्छति जन सहसा ग्रहीतुम् ॥ ३ ॥

श्री पाठकोत्तमगुरो ! जगति क्षमात ,
कल्याण इत्थमसि भो प्रथितावदात !
त्वद्भो सुवर्णगतरन्ध्रतरीं विनेव,
को वा तरीतुमलमम्बुनिधि भुजाभ्याम् ॥ ४ ॥

ज्ञात्वा त्वदेकशरण च सता शरण्य !,
मा दीनहीनमव ते पदपद्मलीनम् ।
ससारवार्धिगमिहेहि गुरो ! पशुर्वा,
नाभ्येति किं निजशिशो परिपालनार्थम् ॥ ५ ॥

श्रीमत्सुखसागरसद्गुरुस्तुतिपञ्चकम्

(उपजाति)

कल्याणकल्पोर्विरुहा कलाप-,
प्रवर्धक पूतगवौघमेघ ।
कुन्देन्दुकर्पूरपयोनिभानि,
यशासि विश्वे वितरन्ति यस्य ॥ १ ॥

दोषाकरश्रीदलने विनोदि,
मित्रप्रमोदीति तमो विभेदि ।
दिवानुरूप सुमन प्रबोध,
यदीयतेजो भुवने प्रसिद्धम् ॥ २ ॥

परमेष्ठिनामन्त्यपदे प्रतिष्ठे !
यो ज्यायसा तत्त्वविदा वरिष्ठ ।

अध्यात्मज्ञानाध्वनि वै रिरंसु-
विमुक्तरागो जितकामशत्रुः ॥ ३ ॥

पिता सुकल्याणश्रियः परात्मा,
बहिष्कृताज्ञानमलः सुसीमा ।
विराजते सद्गुणरत्नराशिः
स ब्रह्मचारी जयतात् सुखाब्धिः ॥ ४ ॥

गुरो ! सुखाब्धे ! भगवन् ! तमोभि-
द्धरे ! समज्यावलिकामिमां ते ।
निस्तन्द्र तातोऽत्र कवीन्द्रलोकाः,
स्तुवन्ति तां ते परमां भजन्ते ॥ ५ ॥

श्रीमच्छगनसागरसद्गुरुस्तुतिपञ्चकम्

(उपजाति)

अपारसंसारविहारहारि,
गुरूपदेशं सुगुरोर्निशम्य ।
विधाय यः स्वीयपरानुकम्पां,
कषायमुक्तो विषयैर्विरक्तः ॥ १ ॥

यो बन्धनानीव किल स्वबन्धून्,
रोगान् हि भोगान् वनिता विषस्य ।
लताश्च मत्वेह शिवैकचित्तो,
ललौ व्रतं यद्विमलं जिनोक्तम् ॥ २ ॥

पतिः सतीनां सुगतिः समस्ति,
ज्ञात्वा प्रिया यस्य बभूव साध्वी ।
महामुनिः सैष प्रभूतधामो,
निजात्मभावे रमतीति रामः ॥ ३ ॥

गुप्तेन्द्रिय कर्मविनाशकारि,
तपो निराहारि चकार चारु ।
निजान्तकालेऽपि महातपस्वी,
स ब्रह्मचारी जयतात् सुगन्धि ॥ ४ ॥

शस्त्रा करीन्द्रेण विनिद्रितेन,
नतेन कल्याणरमाविलास ।
सम्प्राप्यते ते छगनाम्बुधेऽङ्ग !
श्रीमद्गुरो ! पूतचरित्रगात्र ॥ ५ ॥

श्रीमद् भगवानसागरसद्गुरुस्तुतिपञ्चकम्

(मन्दाक्रान्ता)

राम राम विषयविपिने कर्मजालेन बद्धः,
काम काम मृगजलमपीशान्धबुध्या पिपासुः ।
भ्राम भ्राम भवघनवने नाथ ! जातश्रमोऽहं,
नामं नामं वितर भगवन् दर्शनं याचये मे ॥ १ ॥

पाय पाय कुसमयविदां गोमधृग्भ्रान्तचेता,
श्राय श्राय कुमतमभितो जीवहिंसाधिरूढम् ।
ध्याय ध्याय हरिहरविधीन् देवबुद्ध्या मुनीश !,
दाय दाय तदपि दयया दर्शनं तारय त्वम् ॥ २ ॥

बोधं बोधं हृदयकमलं विश्वदृग्गोभिराशु,
शोधं शोधं तिमिरनिकरं त्व मन पावयेश ! ।
धार धार तव प्रतिकृतिं चेतसि प्राप्तबोध,
स्मार स्मार गुणगणमणीन् प्राणित प्रीणयेऽहम् ॥ ३ ॥

जाप जाप जननमृतिह नाममन्त्रं त्वदीयं,
वाप वाप शिवतरुनिदानं स्फुरद्बोधिबीजम् ।

मारं मारं विकटभयदं मोहमल्लं जिगीषुः,
कारं कारं तव नुतिततीं मोक्षगस्स्यान् मुमुक्षुः ॥ ४ ॥

स्वच्छातुच्छे खरतरगणे श्री सुखाब्धेः समन्ता,-
दुल्लासी त्वं समसि भगवन् सागरातप्रभाव ।
गोपीपूपाकलित ! सकलानन्दकन्दप्रदातः,
निस्तन्द्रैस्तैः प्रकटितयशः शं कवीन्द्रैः प्रदेहि ॥ ५ ॥

श्रीमत् त्रैलोक्यसागरसद्गुरुस्तुतिपञ्चकम्

(उपजाति)

विलोक्य त्रैलोक्यमिदं समस्तं,
चलाचलं केवलिसूक्तचक्षुषा ।
गृह्णन्नसारेऽपि वृषैकसारं,
गुणानुरागी च सदा विरागी ॥ १ ॥

विज्ञाततत्त्वोऽत्र जिनोक्तमार्गे,
यः प्राणिनां प्रीणितपुण्यभाजाम् ।
पुनर्भवाढ्योऽप्यपुनर्भवाय,
हितोपदेष्टा शुभतत्त्वभाषी ॥ २ ॥

मुक्त्यङ्गनानाङ्गतयेरिताप्तै,-
स्तदाप्तये चेतसि जातमोहः ।
मोहस्य द्रोहीह तथापि भूतः,
निरस्तमोहश्च विधूतद्रोहः ॥ ३ ॥

स्तुतिकृतां यस्य गुरोर्जनानां,
त्रैलोक्यसिन्धुश्रिय एव सन्ति ।
सोऽयं स्वयंभूरमणाम्बुधीश-
स ब्रह्मचारी जयतात् सुखाब्धिः ॥ ४ ॥

त्रैलोक्यसिन्धो ! सुकवीन्द्रलोको,
निस्तन्द्रमुद्रं खलु वीतशोकः ।
कल्याणपद्माकृतकेलिसद्मा,
य स्तौति भक्त्यात्रपरत्र स स्तात् ॥ ५ ॥

श्रीमत् हरिसागरसद्गुरुस्तुतिः

(शिखरिणी)

गुणाधारं सारं सुविशदविचारं सुविहित,
शुभस्फाराऽऽचारं प्रतिहतविकारं कृतिपरं ।
स्फुरत्सच्चिज्ज्योतिं सततमुपकारव्रतधरं,
गणाधीशाचार्यो जयति हरिसिन्धुं शिवकरं ॥ १ ॥

मुमुक्षूणां मोक्षोत्तमविधिविधाता नयमयो,
भयोद्वेगादिभ्यो विरहिततनुः पुण्यनिचयः ।
कृतास्थाया धीरः प्रकृतिवरवीरः शमभरो,
गणाधीशाचार्यो जयतु हरिसिन्धुः शिवकरः ॥ २ ॥

यदादेशाधीनश्चरणगुणपीनो व्रतिजनः,
जनानां कल्याणं जनयति विहारं विरचयन् ।
प्रतिग्रामं बोधैर्जगति खलु सोऽयं दरहरो,
गणाधीशाचार्यो जयतु हरिसिन्धुः शिवकरः ॥ ३ ॥

सिते मार्गे वर्षे द्विनवनिधिचन्द्रे शुभदिने,
चतुर्दश्यां सङ्घैः सह बहु समारोहमवदत् ।
महासंघः श्रेष्ठं यमिषु यमिहेत्येष भुवने,
गणाधीशाचार्यो जयतु हरिसिन्धुः शिवकरः ॥ ४ ॥

श्रिय क्रीडास्थाने लसदजिमगञ्जे पुरवरे,
समायातैर्नानानगरवरवासैः सविनयैः ।

स्फुटद्दर्पोत्कर्षैरपि समुदघोपीत्थमयकं,
गणाधीशार्यो जयतु हरिसिन्धुः शिवकरः ॥ ५ ॥

सुसूरेः संस्कारे नयनरुचिरे यस्य जनता,
महोत्साहेनाग्राह्निकमनुपमं तीर्थरचनैः ।
सुरम्यं सत्काम्यं कलयतिमहो सैप सततं,
गणाधीशाचार्यो जयतु हरिसिन्धुः शिवकरः ॥ ६ ॥

सुखाम्भोधेर्दीव्यद् गुणगुरोः श्री भगवतः,
पदं येन प्राप्तं निरुपधिविधानं जयकरम् ।
अपूर्वं पूर्वं वै शिशुवयसि सोऽयं व्रतधनो,
गणाधीशाचार्यो जयतु हरिसिन्धुः शिवकरः ॥ ७ ॥

अहं मन्ये धन्यां मरुधरधरां रत्नजननीं,
यतः पुंरत्नं चेदगिति महसां स्थानमभवत् ।
अयं भास्वान्पूर्वोदयशिखरिणीह स्थित इव,
गणाधीशाचार्यो जयतु हरिसिन्धुः शिवकरः ॥ ८ ॥

महापूर्वाम्भोधेरभवदपराम्भोनिधितट–,
मिते क्षेत्रे यस्य प्रगतिरुदयैक प्रसृमरा ।
तमोहारी श्रीमानभिनवरुचिः सैष तपनो,
गणाधीशाचार्यो जयतु हरिसिन्धुः शिवकरः ॥ ९ ॥

सतामालोकार्थं जगति वहु संस्थापयति यः,
क्वचित्तीर्थेशानां क्वचिदपि गुरूणां प्रतिकृतीः ।
क्वचिद्ग्रन्थागारं क्वचिदुरुकविद्यालयमयं,
गणाधीशाचार्यो जयतु हरिसिन्धुः शिवकरः ॥ १० ॥

सहस्रैर्लक्षैश्चापरिमितधनैः श्रावकगणः,
करोत्यध्यक्षत्वे विहिततपसां यस्य सुगुरोः ।

विराजत्प्रौढोद्यापनमुखमहास्येप मुनिपो,
गणाधीशाचार्यो जयतु हरिसिन्धु शिवकर ॥ ११ ॥

महातीर्थे श्रीमद्विमलगिरिराजे विमलता,
य आत्मीया कर्तुं समधिकनया त्रिविमलधी
चतुर्मासं चक्रे जिनपतिमतोद्योतनगुणो,
गणाधीशाचार्यो जयतु हरिसिन्धु शिवकर ॥ १२ ॥

पुरे पादालिप्ते सुगुरुजिनदत्ताभिधपर-
प्रथाभाप्त ब्रह्मोत्तरसुपदचर्याश्रममपि ।
कृते छात्राणा स्मारभत इह सोऽय गुरुयशा,
गणाधीशाचार्यो जयतु हरिसिन्धु शिवकर ॥ १३ ॥

गिरौ तीर्थे तस्मिन्खरतरविरोधिप्रकृतिभिः,
निरस्त तन्नामोल्लिखितवरलेख पुनरपि ।
स्थिरीचक्रे य "श्री खरतरवसी" त्याह्वयमय,
गणाधीशाचार्यो जयतु हरिसिन्धु शिवकर ॥ १४ ॥

समारेभे सम्मेलनमथ पुरे तत्र कुशल,
शतारिश्चैरप्यप्रतिहतबलो, यो जयकरम् ।
अलङ्कर्माणाना खरतरजनाना शुभमय,
गणाधीशाचार्यो जयतु हरिसिन्धु शिवकर ॥ १५ ॥

कृता यात्रा सिद्धाचलसुगिरिनारार्बुदगिरि-
चकासत्सम्मेतप्रभृतिवरतीर्थेष्वनुपमा ।
स्वनिर्वृत्यै येनोज्ज्वलमतिमता सोऽयमधुना,
गणाधीशाचार्यो जयतु हरिसिन्धु शिवकर ॥ १६ ॥

फलोदीद्रङ्गाढे विपुलतरसघोऽगमदल,
यदध्यक्षत्वे श्रीमरुधरगतं जैसलपुरम् ।

जिनानां वन्दारुः सह सुविधिना येन स गुरुः,
गणाधीशाचार्यो जयतु हरिसिन्धुः शिवकरः ॥ १७ ॥

पुरात्पादालिप्तादमलपदतालध्वजगिरौ,
प्रधानः सङ्घेनामितजनयुतेनोत्सवजुषा ।
सुयात्रांयश्चक्रेऽभिमतफलदां सोऽयमनघो,
गणाधीशाचार्यो जयतु हरिसिन्धुः शिवकरः ॥ १८ ॥

प्रभासाच्छ्रीवेरावलनगरतः पोर्चुगिजके,
सुयात्रां दीवाख्ये जलधिविलसद्बन्दिरवरे
महासङ्घे नामा व्यदधत य एष प्रभुवरो,
गणाधीशाचार्यो जयतु हरिसिन्धुः शिवकरः ॥ १९ ॥

व्यवस्था येनेद्धा जयपुरवरे पुण्यनगरे,
पुराणे भाण्डारे विविधवरसाहित्यखचिते ।
विशिष्टात्मा सोऽयं सकलनयविद्वान्गुणिमतो,
गणाधीशाचार्यो जयतु हरिसिन्धुः शिवकरः ॥ २० ॥

सुदीक्षासंस्कारो मम समजनि श्रीजयपुरे,
गुरोर्यस्य श्रीमद्वरदकरपद्मेन परमः ।
स एषोऽर्च्यो लोके भवजलधिनिर्यामकपदो,
गणाधीशाचार्यो जयतु हरिसिन्धुः शिवकरः ॥ २१ ॥

पुरे दिल्हीसंज्ञे सुबहुमतभाजां मतिमतां,
सतां जाते सम्मेलन इति पवित्रार्हतमतम् ।
कृतं व्यक्तं येन प्रकटविभवं सोऽयमनिशं,
गणाधीशाचार्यो जयतु हरिसिन्धुः शिवकरः ॥ २२ ॥

स्वस्तिश्रीसुखभोगभावसुभगो दान्तः प्रशान्तो महान्,
पञ्चाचारविचारसारविलसद्मुख्यक्रियाज्ञानवान् ।

पुण्यात्मा परमोदयो गुणगुरुपूज्यप्रभावास्पद,
श्रीश्रीश्रीहरिसागरो विजयता सूरीश्वर. सर्वदा ॥२३॥

भक्तामरसमस्याया गणाधिभर्तुः श्रीमद्‌हरिसागरसद्‌गुरोः स्तुतिः

(वसन्ततिलका)

गुरोर्वचनमाहात्म्यदर्शि विशेषणम्

भक्तामरत्वपदवीप्रदमूहनीय,
सिद्धान्तशुद्धरचन वचन यदीयम् ।
मूलापसारणविधौ खलु सज्जनानां,
बालम्बन भवज-लेप-लताञ्जनानाम् ॥ १ ॥

गुरोर्गुरुगणाधिपत्यगुणसूचनम्

य श्रीसुखादिभगवत्त्वनिरन्तराय,
धत्ते पद जनमत सुगणाधिपत्यम् ।
श्रीमद्‌गुरु गुणगुरु हरिसागराख्य,
स्तोष्ये किलाहमपि त प्रथम जिनेन्द्रम् ॥ २ ॥

गुरोर्बाल्ये दीक्षाधयणाश्रयम्

देशोनसिद्धिमितवर्षविशेषिबाल्ये,
तीर्त्वा महाव्रततर्तीमतिखड्गधाराम् ।
स्त्रीयान्तरारिविजयाय विना भवन्त-,
मन्य क इच्छति जन' सहसा ग्रहीतुम् ॥ ३ ॥

पाठान्तरं अथवा— गुरोरपूर्वकृषिवृत्तिवर्णनम

त्यक्त्वा कुगोजलहलादिपदान्यपूर्वां,
धर्म'कुगीजवपने कृषिवृत्तिमीश ।

जातः सुकर्षककुलेऽपि विना भवन्त,-
मन्यः क इच्छति जनः सहसा ग्रहीतुम् ॥ ३ ॥

गुरोर्नामाश्रयण महत्त्वम्

हे पूज्यपाद । भवतः शुभनामधामा-,
धारं पदं बहुरसं गुरु धीवरोऽपि ।
आय विनैव भवदीयदयैक नावः,
को वा तरीतुमलमम्बुनिधिं भुजाभ्याम् ॥ ४ ॥

गुरोर्भारत्याः पुत्रत्वम्

पुत्रीयति श्रुतसुरीति गुरो ! भवन्तं,
वाणीतयावनकृते त्रिदिवादिहैति ।
युक्तं तदेव जननी सकलेऽपि देशे,
नाभ्येति किं निजशिशोः परिपालनार्थम् ॥ ५ ॥

गुरोः प्रसत्तेः प्रभावः

मादृग्जनेऽपि सुमहाव्रतसिद्धवृत्ति-
र्या वर्त्तते गुरुवरास्ति तव प्रसक्तिः ।
स्याद्धामधावधिकहृद्यतमा वनश्री-,
स्तच्चारुचूतकलिकानिकरैकहेतुः ॥ ६ ॥

गुरोर्जीवनमहिमा

त्वत्सत्प्रभावि परिपूतसुजीवनेन,
षड्यन्त्रजालमखिलं स्खलितं खलानाम् ।
लोकेऽनुकुर्वेदभितोप्यवलोक्यते तत्,
सूर्यांशुभिन्नमिव शार्वरमन्धकारम् ॥ ७ ॥

गुरोर्बोधसिद्धिः

सिद्धिं भवद्विहित ईश ! विशेपदेश-,
कालानुकूलजनबोधविधिः प्रयाति ।

स्वात्या पयोदपरिमुक्त इवेह शुक्तौ,
मुक्ताफलद्युतिमुपैति ननूदबिन्दु ॥ ८ ॥

गुरो रत्नत्रयी वैशद्यम्

भास्तीन ! दुर्गतिसपत्नमयत्नजातं,
रत्नत्रय निरुपम भवतोऽतिकान्तम् ।
हृत्कोशसंस्थितमहो न तथा विभान्ति,
पद्माकरेषु जलजानि विकाशभाञ्जि ॥ ९ ॥

गुरो स्वाश्रितवृत्तेर्गुरुत्वम्

आत्माधिक ननु निजाश्रितसद्गुणौघ,
कुर्वन् भवान्विबुधवर्ण्ययशा प्रजात ।
हे लब्धवर्ण ! सुजनै किमु वर्ण्यतेऽसौ,
भूत्याश्रित य इह नाऽऽत्मसम करोति ? ॥१०॥

गुरोर्वचनमाधुर्यम्

सञ्जीवन हि भवदाननपुष्करोत्थ,
सर्वात्मदोषविपद्ह सरस सुवर्ण्यम् ।
प्राप्य प्रगीतगुणगौरव ! वीततृष्ण,
क्षार जन जलनिधेरशितु क इच्छेत ॥ ११ ॥

गुरोर्जन्मभूमिवैशिष्ट्यम्

वीक्ष्याशु रोहणगिरिस्तव रोहिणाख्या,
सश्रीकसत्पुरुषरत्नसुजन्मभूमिम् ।
गात्न स्वमानमधुनोज्झति नात्र चित्र,
यत्ते समानमपर न हि रूपमस्ति ॥ १२ ॥

गुरोर्जितेन्द्रियत्वम्

कन्दर्पदर्पबहुलं प्रबलं बलास्तं,
चक्षुः कटाक्षकुटिलं प्रमदाङ्गनानाम् ।
मोघीभवन्नहि विराजति हि स्वभावाद्,
यद् वासरे भवति पाण्डुपलाशकत्यम् ॥ १३ ॥

गुरोर्महोदयः

यत्ते महोदयमहो दयनीयभावाः,
पश्यन्ति नैव च सुपक्षिबहिष्कृता ये ।
दोषोदये बहुतमोगुणवल्लभत्वात्
कस्तान्निवारयति संचरतो यथेष्टम् ॥ १४ ॥

गुरोः कल्याणप्रकृतित्वम्

कल्याणप्रकृतिमनो विकृतिं न याति,
पक्षीव नाथ भवतः कुटिलाशयानाम् ।
पत्रैर्वचोभिरिव तत्प्रलयानिलैर्वा,
किं मन्दराद्रिशिखरं चलितं कदाचित् ॥ १५ ॥

गुरोरपूर्वदीपत्वम्

स्नेहक्षयो न गुणवृत्तिलयो न पात्र-,
तापोदयस्त्वयि न नो मलसञ्चयोऽपि ।
विस्तारिदुर्णयतमोहरणे परन्तु,
दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ जगत्प्रकाशः ॥ १६ ॥

गुरोः सूर्यातिशायिमहिमत्वम्

चित्रं महत्खरतराङ्कपदव्यपीह,
त्वं पद्मपाणिरनणूदयमूर्तमूर्तिः ।

स्फुरंद् यमस्य जनकोऽपि यमान्तकारी,
सूर्यातिशायिमहिमासि मुनीन्द्र ! लोके ॥ १७ ॥

रोरपूर्वशशाङ्कबिम्बत्वम्

दोषोपघातसुभग सकलाङ्गपूर्ण,
नित्य कलङ्करहित परमामृतेद्धम् ।
त्वामेव मन्य उदयाय सुखोदधीना,
विद्योतयज्जगदपूर्वशशाङ्कबिम्बम् ॥ १८ ॥

गुरोर्निर्दोषित्वम्

सूर्येन्दुभाधिकगुणैरनयान्धलाना,
चेत. प्रकाशमुपयाति न चेत्त्वदीयैं ।
आदीनवो न स तवोपरके भवेद्वा
कार्यं कियज्जलधरैर्जलभारनम्रै ॥ १९ ॥

गुरौ गुरुप्रसाद

त्वय्येव सत्यपि गणे गुरुदिव्यदृष्टि-,
पातोऽभवन्निजपदैकविभूषणाय ।
रत्ने यथानुरक्तिरस्ति परीक्षकाणा,
नैव तु काचशकले किरणाकुलेऽपि ॥ २० ॥

सुभाषित-संग्रहः

न धर्मे ज्ञातिगोत्राणा, बन्धन विद्यते क्वचिद् ।
सामाजिकव्यवस्थैव, ज्ञातौ धर्मनिबन्धनम् ॥ १ ॥

वस्तुस्वभाव एव स्याद्, धर्मो ह्युन्नतिसाधक ।
अधस्तनगतात्मान, क्रमेणोच्चै समुद्धरन् ॥ २ ॥

वन्धनं चेद् भवेद्धर्मो, मुमुक्षूणां महात्मनाम् ।
तदत्र कारणं किं स्याद्, मुक्तेर्युक्तिपुरस्सरम् ॥ ३ ॥

संज्ञामपेक्षते नैव, नैव देशमेपक्षते ।
संज्ञादेशमतीत्यैव, धर्मो जगति राजते ॥ ४ ॥

पुंमांसं वा स्त्रियं वापि, आर्यं चैवमनार्यकम् ।
श्रितात्मानं पुनात्येव, धर्मो जलमिवात्मना ॥ ५ ॥

कतकक्षोदसंव्याप्तं जलं निर्मलताम्भजेत् ।
सकर्मात्मा सुधर्मेण, श्रितो निष्कर्मतां श्रयेत् ॥ ६ ॥

यथेन्धनसमूहैश्च, तृप्यत्येव न पावकः ।
गुणैरजस्तमोमुख्यै-र्वाह्यात्मा नैव तृप्यति ॥ ७ ॥

दानशीलतपोभावैः, स वै धर्मः प्रसाध्यते ।
स्वर्गापवर्गसौख्यानि, भवेयुः करणाण्यहो ॥ ८ ॥

शौर्यं धैर्यमसत्यधिक्करणता वुद्धिर्निजात्मोन्नतेः,
कृत्यं नीतिरमायिता च विनयः सम्यग्गुणग्राहिता ।
सत्यं चेन्द्रियजेतृता सदयता स्वस्योपकारिस्मृतिः,
तत्वोहेतिगुणा जनैर्हृदि सदा धेयाः सुधर्मेच्छुभिः ॥

नहि विग्रहो विधेयः

(कव्वालीरागेण गीयते)

जाते विचारभेदे, नहि विग्रहो विधेयः ।
सम्यग्विचारणीयं, नहि विग्रहो विधेयः ॥ १ ॥

वस्तु-स्वरूपवोधे, पूर्णा वयं न यावत् ।
तावत् स्ववोधभेदे, नहि विग्रहो विधेयः ॥ २ ॥

क्रमशो विकाशवत्यो, जनवुद्धयो जगत्याम् ।
अत एव तत्त्वविद्भि-र्नहि विग्रहो विधेय ॥ ३ ॥

स्याद् वक्तुरिच्छयैव, गौणप्रधानभाव ।
प्रतिपादनीयविषये, नहि विग्रहो विधेय ॥ ४ ॥

जैनास्तथैव शैवा, अपि सौगताश्च केचिद् ।
सन्तीह सन्तु किन्तु, नहि विग्रहो विधेय. ॥ ५ ॥

विज्ञान-योगमेके, कर्मादियोगमेके ।
साध्य सम समेषा, नहि विग्रहो विधेय ॥ ६ ॥

वर्णाश्रमाश्रित वा, वर्णोत्तर च धर्मम् ।
शान्त्या विचारयन्ता, नहि विग्रहो विधेय ॥ ७ ॥

वर्णाश्रमाश्रयोऽय, वर्णोत्तरोऽथवायम् ।
धर्मो हि चिन्तनीयो, नहि विग्रहो विधेय ॥ ८ ॥

आध्यात्मिकोऽथवैष , किंवाधिभौतिकोऽयम् ।
धर्मो हि चिन्तनीयो, नहि विग्रहो विधेय ॥ ९ ॥

समाप्तोऽयं संस्कृतविभागः.

हिन्दी विभाग

प्रातःकाल की प्रतिज्ञा

हरिगीत

जल्दी उठेंगे छोड़ निद्रा पुण्य प्रातः कालमें,
मां बाप को वन्दन करेंगे और प्रातः कालमें ।

दर्शन करेंगे मन्दिरों के नित्य प्रातः काल में,
ऐसे नियम पालन करेंगे सत्य प्रातः काल में ॥

विद्या हमें पढ़नी यहाँ वह शीघ्र प्रातः काल में,
बस इसलिये हम भी पढेंगे पाठ प्रातः कालमे ।

सुख संपत्ति बल बुद्धि होती शुद्धि प्रातः काल में ,
जिससे नियम पालन करेंगे सत्य प्रात.काल में ॥

श्री पंच परमेष्ठी वंदना–पञ्चमङ्गल सूत्र

श्री अरिहंत नमुं, नमुं-सिद्ध गुणी भगवान् ।
नमुं आचारज, नमुं–उपाध्याय महान् ॥

नमुं साधु सबलोक में, परमेष्ठी ये पांच ।
इनको नमते पाप की, पास न आवे आंच ॥

मंगल सब संसार में, आदि मंगल थान ।
परमेष्ठी को वंदना, नित कीजे चतुर सुजान ॥

सुगुरु वन्दन–प्रणिपात सूत्र

क्षमाशील ! स्वामी ! गुरुवर ! तपस्वी ! गुणनिधे !
हुई इच्छा मेरी चरणकमलों में नमन को ।

हटा के पापों को हृदय पर से शक्ति रहते,
नमु पूज्य श्रीमन् विनयविधि से मस्तक झुका ॥

सुगुरुको सुखपृच्छा

इच्छाकारी पूज्य आपकी सुखपूर्वक क्या रात रही !
सुखपूर्वक दिन बीता क्या ? सुखपूर्वक तपविधि आज रही !

पीडा रहित शरीर रहा क्या ? संयमयात्रा सुखमय है !
सुखशाता है ? गुरो गोचरी की भी विनती सविनय है ॥

सुगुरु से दोषों की क्षमायाचना

इच्छाकारी हे भगवन् ! आदेश मुझे दें आप अभी,
खड़ा हुआ हु गुरो खमाने दिन सबधी दोष सभी ।

आखा पा दिन के अपराधो को मे नाथ खमाता हु
पावन पदकमलों में शिरको झुका परम सुख पाता हु ॥

जो कुछ मुझसे हुआ काम गुरु प्रीति का हरनेवाला
अथवा हुआ विशेषतया अप्रीति को करनेवाला ।

भोजनमे पानीमें और विनय सेवा मे हे स्वामी,
एकवार या वारवार हो पर्दा बोलने मे खामी ॥

ऊचे आसनपर मे बैठा या मै बैठा बराबरी,
आप रहे फरमा मै न बोला ध्यान न दिया नहीं ।

या फरमाई बात विशेषतया मैंने हो अगर नहीं,
निज बुद्धि वैभव दिखलाने तो अपराध महान् यही ॥
जो कुछ ऐसे मैंने स्वामी विनयहीन गर काम किये,
छोटे मोटे पता न मुझको किन्तु आपने जान लिये ।
दया बुद्धि से उन अपराधों की हे गुरुवर! क्षमा करें,
हो निष्फल मम पाप यही शुभ आशीर्वाद प्रदान करें ॥

प्रार्थना

पाप त्याग करुं समाधि भगवन् पाऊं मुहूर्तावधि,
धारुं दो करणे त्रियोग मनसा वाचा तथा कर्मणा ।
पापों को न करुं स्वयं न पर से भी मैं कराऊं यहाँ,
आत्मा से उस पाप को कर पृथक् निन्दूं व गर्हुं प्रभो !

पार्श्वनाथप्रभु-प्रार्थना

ॐ नमो दिव्य धरणीन्द्र पद्मावती,
सहित जिन पार्श्वनाथाय नित्यं,
मंत्रराजाधिराजं पवित्रं भजे,
कोटि संकट कटे भाव सत्यं ।
आज प्रभु पुण्य दरबार में मैं करुं
अरज़ अभिराम प्रभुनाम ध्यानी,
हे प्रभो ! वांछितं देहि मे देहि मे,
जानते हैं प्रभो आप ज्ञानी ॥ १ ॥

तूं ही माता पिता तूं हितु तूं सखा,
तुंही संसार में एक स्वामी,
माफ कर दीजिये दूर कर दीजिये,
नाथ मुझ में रही सर्व खामी ।

पतित हू पातकी हूं मुझे वक्ष दो,
आप मा बाप हे दिव्यदानी,
हे प्रभो ! वाछित देहि मे देहि मे,
जानते है प्रभो आप ज्ञानी ॥ २ ॥

चचला से चपल चित्त धारा प्रबल,
चल रही ध्यान कैसे करु मे,
वचन में व्यग्रता उग्रता से प्रभो,
बन रही मौन कैसे करु मै ।

अग प्रत्यग में शिथिलता छा रही,
योग कैसे करु मै विमग्नी,
हे प्रभो ! वाछित देहि मे देहि मे,
जानते है प्रभो आप ज्ञानी ॥ ३ ॥

आपका एक आधार निज चित्त में,
धार प्रभु ध्यानपथ मे लिया है,
ओर जजाल परपच सब छोड के,
आपके चरण मे चित दिया है ।

अय प्रभो ! सिद्ध होऊ न होऊ मुझे,
है न परवा तुम्ही हो प्रमाणी,
हे प्रभो ! वाछित देहि मे देहि मे,
जानते है प्रभो आप ज्ञानी ॥ ४ ॥

★

विपत्तिविमोचन धरणेन्द्रदेव प्रार्थना

पार्श्व जिनराज सेवक सुनो आज,
अहिराज धरणीन्द्र यह बात मेरी,

दास मैं फंस गया त्रास अरिपास में,
पा रहा आस अब एक तेरी ।

गरीब नीवाज है विरुद् सिरताज तुझ,
मार अरि मार रख लाज मेरी,
अत्र आगच्छ आगच्छ हे नागपति,
विपत्ति को काट प्रभु कर न देरी ॥ १ ॥

मैं स्वयं शिथिल हुं शक्ति से हीन हूं,
लीन हूं ध्यान में पर तुम्हारे,
ओर की आस करता न हूं मैं कभी,
शरण हूं नाथ बस मैं तुम्हारे ।

वर्ष बीते रहूं किन्तु रीता सदा,
दुःखगीता सुनें कौन मेरी,
अत्र आगच्छ आगच्छ हे नागपति,
विपत्ति को काट प्रभु कर न देरी ॥ २ ॥

जान अनजान हो जाओगे आप तो,
पापि दुश्मन मुझे घेर लेंगे,
जान लेंगे विचारा मुझे वे सभी,
ध्यान इफतान करने न देंगे ।

दूर कर दूर कर दूर्जनों को प्रभु,
लाज रख आज हे देव मेरी.
अत्र आगच्छ आगच्छ हे नागपति,
विपत्ति को काट प्रभु कर न देरी ॥ ३ ॥

दुष्ट दल दलनकर पाट दे काट दे,
चिकट अरराट अरि सब पुकारे,

चण्ड परचण्ड दे दण्ड अरि झुण्ड को,
खण्ड खण्डातमा होय सारे ।
जाल रच खल मुझे फाद दे फादिये,
आप उनको प्रभु एक वेरी,
अत्र आगच्छ आगच्छ हे नागपति,
विपत्तिको काट प्रभु कर न देरी ॥ ४ ॥

गर न मेरी सुनोगे प्रभु वात तो,
स्वामी सवध कैसे रहेगा,
स्वामी रहते हुए होंय सेवक दुखी,
दोप तव लोक किसको कहेगा ।

स्वामीका स्वामीका सोचतो आप फिर,
क्यों वजाते न रणचडी मेरी,
अत्र आगच्छ आगच्छ हे नागपति,
विपत्तिको काट प्रभु कर न देरी ॥ ५ ॥

चरण के शरण में हु पड़ा आपके,
वाप की गोद में वाल जेसे,
काल से भी न मैं भीति खाऊ कभी,
शरण पा स्वामि का आप जैसे ।

आप अपनी विचारो प्रभु क्या कहु,
स्वामि निज दुख को टेरी टेरी,
अत्र आगच्छ आगच्छ हे नागपति,
विपत्ति को काट प्रभु कर न देरी ॥ ६ ॥

देवी पद्मावती मा सती आप भी,
मौन मम दुख लख क्या रहेंगी,

आईये नाथको साथ ले आप भी.
दूर क्या दास दुःख में रहेंगी ?

आप सोचाइये ओर समझाइये.
देवको विनति यह एक मेरी,
अत्र आगच्छ आगच्छ हे नागपत्ति,
विपत्ति को काट प्रभु कर न देरी ॥ ७ ॥

मानता हूं प्रभो दुष्ट जन कुछ नहीं,
कर सकेंगे भलाइ वुलाई ।
पर प्रभो ओर जन देख हंसते मुझे,
स्वामी इसका निलख है सहाई ।

स्वामी निंदा न मुझसे सुनी जाय पर,
क्या करुं स्वामि सुनता न टेरी,
अत्र आगच्छ आगच्छ हे नागपति,
विपत्तिको काट प्रभु कर न देरी ॥ ८ ॥

अरिहन्त धून

(तर्ज—सुनो २ ए दुनिया वालो)

अरिहन्त अरिहन्त अरिहन्त,–
झगमग जीवन ज्योति जगाओ ।
आठ करम या आठ ग्रहों से,
मन में मत घबराओ अरिहन्त० टेर०

अरि–शत्रु का हनन करें. उन अरिहन्तो को गाओ ।
अरिहन्तों का ध्यान करो नित, निज अरि दूर भगाओ ॥अर० १

वन्दन पूजन योग्य भाव, अर्हन्तों को नित ध्यावो ।
परम पूज्य श्री अर्हन्तों की, पावन पदवी पाओ ॥ अरि० २

जनम गये सो जनम गये जो-फिर से नहीं जनमेगे।
उन अरुहन्तो को मन लाओ, दु ख सब दूर गमेगे ॥ अरि० ३
रहत गुप्तता कहीं किसी की, रही नहीं है कोई।
उन अरहन्त को आराधे, ज्ञानी होवे सोई ॥ अरि० ४
नहीं शस्त्र नारी संग जिनके, वे सब अरज कहावे।
अरुह अरह अरहन्तों को तुम, पाओ पुण्य प्रभावे ॥ अरि० ५
आठ करम या आठ ग्रहो का, तुमपे असर न होगा।
ॐ नमो अरिहताण पद-सच्चा रक्षक होगा। अरि० ६
कोमल भावे "हरिकवीन्द्र" जन, जीवन तन्मय भावे।
ॐ नमो अरिहताण पद, घर घर मगल आवे। अरि० ७

प्रभु प्रार्थना

(तर्ज–जिनने राग द्वेष कामादिक)

हिंसा मुझको नहीं सुहाती, हिंसा करता जाता हू
झठ न मुझको कभी सुहाता, झठ बोलता जाता हू।
मेरी चौरी मै न सहू पर-हा! नित चौरी करता हू,
प्रभो! पाप से पिण्ड छुडाओ, यही अरज नित करता हू ॥१॥

ब्रह्मचर्य की बात कर पर-घात निरन्तर करता हू,
पाप परिग्रह पुण्य मान मै, भूला सग्रह करता हू।
पाच पाप ये महा भयकर, पाप ताप मे तपता हू,
पापी हू, पर पुण्यवान होने को हरदम खपता हू ॥२॥

क्रोध करु सारा जग जाने, पर समभावी बनता हू,
मान करु है पाप किन्तु मन-धीर वीर मै बनता हू।
मायाजाल करु चतुराई-पर जगको दिखलाता हू,
लोभ पाप का मूल पुण्यवानी-पर अपनी गाता हू ॥३॥

ये कषाय भी पाप रूप है, इनसे होती दुर्गतियां;
छोड़ नहीं सकता हूं कारण, मेरे मन की दुर्मतियां ।
पापों में सन्ताप भरा रहता है-सुखका लेश नहीं;
करो कृपा हे नाथ निरंजन ! रहे पाप का शेष नहीं ॥४॥

निष्पापी जीवन धन धन है, जीना मरना जयकारी;
पापी जन जीते मरते है, निष्पापी की बलिहारी,
"हरि कवीन्द्र" परमातम कृपया, वह दिन धन मेरा होगा;
मिच्छामि दुक्कड़मय मेरा, जीना या मरना होगा ॥५॥

जिन-वन्दनाष्टकम्

नाथ निरंजन भवभय भंजन, तीन भुवन के हे स्वामी;
वीतराग सुखसागर हे, भगवान् महोदय गुणधामी ।
अजर अमर पूरण परमातम, आतम सत्ता विसरामी;
करता हूं मै वन्दन तेरे-चरणकमल में शिर नामी ॥१॥

आतम सत्ता एक रूप है, पर कर्मो से भेद पड़ा,
भव वन में मैं भटकर रहा तूं-सिद्ध शिलापर जाय चढ़ा,
कैसे भेद मिटे यह मेरा, कहो कहो हे शिवगामी,
करता हूं मैं वन्दन तेरे-चरण कमल में शिरनामी ॥ २ ॥

अविसंवादी आगम तेरा, देता है आदेश यही,
महिमामय तुझ प्रतिमा दर्शन-से दर्शन दो शुद्ध सही ।
इसीलिये तुझ सुन्दर मन्दिर, आया हूं दर्शनकामी,
करता हूं मै वन्दन तेरे-चरणकमल में शिरनामी ॥ ३ ॥

कर्म कटे उपवास किये, वह तुझ दर्शन की चाह करे,
दर्शन खातर खडे हुए से,-छठ तप का फल आन वरे ।
द्वादश तप जितना फल होवे,
पथ में चलते अभिरामी, करता० ॥४॥

अर्धपन्थ में पन्द्रह का फल, मासक्षमण मन्दिर लखते,
छहमासी फल पास पहुंचे, वर्षीतप फल द्वारगते।
सौ वर्षीफल प्रदक्षिणा मे, सहस वर्ष देखे स्वामी, करता० ॥५॥

पुष्पादिक से पूजा का फल-लाख वर्ष तक के जितना,
गीतनाद फल पार नहीं जो-करने में होवे यतना।
तप पूजा से पूज्य हुए हैं पूजक के आतमरामी, करता०॥६॥

सुरनर नायक पूज्य प्रभो तु, पुरुषोत्तम शिवशङ्कर हैं,
बोधिविधाता बुद्ध तू ही परमातम तू अभयङ्कर है,
वाणी अगोचर वर्तन तेरा, तू हो है जगमें नामी, करता० ॥७॥

तेरे ही आदर्शो मे है, मोहक मजुल भाव भरे,
अब तो ऐसी करदो बस ज्यों, मेरा भी भवरोग टरे,
श्री "हरिपूज्य कवीन्द्र" सुवन्दित, होकर तेरा अनुगामी
करता हू मैं वन्दन तेरे चरण कमल मे शिरनामी ॥८॥

पार्श्वप्रभु-प्रार्थना

ॐ अर्हं प्रभु पारसनाथ जय अर्हं प्रभु पारसनाथ।
पार उतारो पारसनाथ, पूजु प्रणमू पारसनाथ ॥१॥

ॐ पद्मावती पारसनाथ, जय पद्मावती पारसनाथ।
शीष झुकावु जोड़ु हाथ, ॐ पद्मावती पारसनाथ ॥ २ ॥

ॐ पद्मा जये पद्मा, पद्मावती प्रभु पारसनाथ।
जय पद्मा ॐ पद्मा, पद्मावती जय पारसनाथ ॥ ३ ॥

दु खहर सुखकर पारसनाथ पद्मा सेवित पारसनाथ।
जय मगलमय पारसनाथ, हे पद्मावती पारसनाथ ॥ ४ ॥

सुखसागर प्रभु पारसनाथ, जय भगवन् श्री पारसनाथ।
जिन हरिपूजित पारसनाथ, 'कवि' ज्ञान दान दो पारसनाथ ॥५॥

प्रभु स्तुति

रूपी अरूपी रूप तेरा जो समझ सकते यहाँ,
वे जन सहज में ही तुझे बस खोज सकते हैं यहाँ।
कहते निरंजन निपट वे अरिहंत रूप न जानते.
अरिहंत हैं भगवंत रूपी नित नमूं गुरु ज्ञान ते॥

ॐ अर्हम् की धून

ॐ अर्ह पद ध्यान लीन मन, मेरा हरदम रहा करें,
ॐ अर्ह पद सरस वचन रस, बस रसनासे बहा करें-टेर०

ॐ अर्हं पद पावन जीवन, अनुगत तप तन सहा करें,
ॐ अर्ह ॐ अर्हं चाहूं, सारे जगजन कहा करें. १

ॐ अर्ह पद है यह मेरा, मुझको इसका भान न था,
उल्टे कारण उल्टी किरिया, खूब करी पर तंत न था. २

आतम धर्म पतित आतम में, पाप ताप परिताप हुआ,
सद्गुरु शरण मिला ॐ अर्हं, अब आतम पद भान हुआ. ३

ॐ अर्ह पद लीन आतमा, ॐ अर्हं पद पाता है,
लट भंवरी के न्याय निरन्तर, गुण गौरव वढ़ जाता है. ४

ॐ अर्ह ॐ अर्ह जप जन, सुखसागर भगवान हुआ,
"हरि कवीन्द्र" कीर्तित अर्ह पद, जीवन कुसुम विकास हुआ ५

अय दीनबन्धो !

[तर्ज—हे प्रभो आनन्द दाता...]

दीनबन्धो ! हे दयासिन्धो ! अरज सुन लीजिये।
दूर कर अज्ञान सब शुभ ज्ञान हमको दीजिये॥ टेर०

बालक सभी हम हैं तुम्हारे, प्रेम को बस चाहते ।
हे पिता परमातमा बस, प्रेम बरसा दीजिये ॥ दीन० १

माँ बापका ही बालकों को, सर्वथा आधार हैं ।
आप हैं माँ बाप तो, रक्षा हमारी कीजिये ॥ दीन० २

निर्बल सभी हम क्यों रहें, जब कि पिता बलवान हो ।
शक्ति देकर दूर निर्बलता, हमारी कीजिये ॥ दीन० ३

देश जाति-धर्म का उद्धार, ज्यों होने लगे ।
मार्ग वह हमको प्रभो बस, आप दिखला दीजिये॥दीन० ४

तुम रीझानेको न हम में, है कवीन्द्रों की कला ।
भेंट है यह वन्दना स्वीकृत, विभो कर लीजिये ॥ दीन० ५

श्री वीतराग स्वरूप स्तुति

(तर्ज—हरिगीत)

ज्ञाता समस्त सुवस्तु के भवसिन्धु-तट झट पा गये,
अविरोध पूर्वापर वचन वादक विमल जीवन भये ।

जो साधु वन्द्य अशेष दोष विमुक्त गुणनिधि धन्य है,
बन्दू सदा उनको भले वे वीर हरि या अन्य हैं ॥

स्तुति

तू तरण तारण दुःख निवारण सहज सुखकारण प्रभु,
मैं दीन हीन अनाथ अशरण शरण मैं आया विभु ।

हे पतित पावन दिव्य जीवन देव दर्शन दीजिये,
और शरणागत प्रणत जन विनतियाँ सुन लीजिये ॥

श्रीमदाचार्य श्री कवीन्द्रसागरसूरि कृत जिन स्तवन चोवीसी

श्री आदिजिन स्तवन

(तर्ज-आसावरी)

भावे श्री आदिजिन वंदू, वंदू पाप निकंदू रे भावे० टेर
पहेले तीर्थंकर प्रभु पहेले, राजा पहेले योगी,
युगल धरम वारक विभु वंदू, शिवरमणी के भोगी रे. भावे १

मरुदेवी माता धन नृप, नाभि पिता धन जिनके।
विनीता नगरी जन्मभूमि धन, तारक त्रिभुवन जनके रे भावे० २

शत्रुंजय अष्टापद आबु, जिनके पुनित प्रभावे,
राजत है, गुण गाजत है, जग तीरथ पदवी पावे रे भावे० ३

वृषभ मनोहर लांछन जिनके, निर्लाञ्छन पद धारी।
सुवरन वरण जो आप अवरणी,
अनुपम गुण अविकारी रे. भावे० ४

सुखसागर भगवान अभयपद, जो हरि पूज्य प्रधाना।
"दिव्य कवीन्द्र" अगोचर महिमा,
दर्शन पुण्य खजाना रे. भावे० ५

श्री अजितजिन स्तवन

(तर्ज-क्या कहूं कथनी)

अजित अजित पद देना नाथ, अजित अजित पद देना,
मेरा दीन वचन सुनलेना नाथ अजित० ॥ टेर ॥

मुझको जान निवल हे स्वामी मोह महीपति सेना,
भवरण में देती है पराभव, दारुण दुःख क्या कहना. नाथ० १

तुमने मोहको मार पछाड़ा, वदला कैसे लेना ।
तुम सेवक मुझको लख वहदु ख देता है दिन रैना नाथ० २

सेवक के अपमान हुए को, सच्चा स्वामी सहे ना ।
दुश्मन दल से वदला लेकर, पावत है सुख चैना नाथ० ३

मैं हु तेरा तू है मेरा, औरों से लेना न देना ।
पर तू रहता है निरपेक्षी, ताते है दु ख सहना नाथ० ४

श्री हरि पूज्य अजित जिन अवतो, मानो "कवीन्द्र" का कहना
मोह विनाशो हुकम करो या, भवरण मे मत रहना नाथ० ५

श्री सम्भवजिन स्तवन

(तर्ज—कव्वाली)

सम्भव जिनेश स्वामी, दर्शन मुझे दिखादो,
जो हो रहा असम्भव, सम्भव उसे बना दो ॥ टेर०॥

कारण व कार्य मे है, भारी पडा जो अन्तर ।
करके दया दयालो, जिनवर उसे हटा दो ॥ सम्भव० १

होना जरुर जिनका, निज साध्य साधना मे ।
सामग्रिया नहीं है, उनसे मुझे मिलादो ॥ सम्भव० २

निज साध्य सिद्धिका तो, रस्ता वडा विकट है।
कैसे कहो मै पाऊ, इतना मुझे वतादो ॥ सम्भव० ३

चलने लगा हु फिर भी, विच में सुदुदमनोंने ।
जालें बिछा रखी है, उनको प्रभो उठा दो ॥ सम्भव० ४

हरिपूज्य आप ही है, साधु 'कवीन्द्र' सच्चे ।
अन्तिम यही है विनती, दर्शन सुधा पिला दो ॥ सम्भव० ५

श्री अभिनन्दनजिन स्तवन

(तर्ज–सुईसुईसारी)

श्री अभिनन्दन दुःख निकंदन,
भावे वन्दन नित्य करुं रे ॥ टेर ॥
आत्मसमर्पण अद्भुत दर्शन,
प्रेम सुधारस पान करुं रे ॥ १
तुझ मुझ विचमें जो परदा है,
उसको जल्दी दूर हरुं रे ॥ २
द्वैधी भाव सदा दुविधामय,
कैसे मैं अब चित्त धरुं रे ॥ ३
हो एकांगी तुझ पद संगी,
काहूं से अब नांहि डरुं रे ॥ ४
हरि पूज्येश्वर अगम अगोचर,
'दिव्य कवीन्द्र' पथि विचरुं रे ॥ ५

श्री सुमति जिन स्तवन

(तर्ज–मेरी गली आजा रे)

तेरी सुमतिनाथ जय हो, तेरी जय हो मेरी विजय हो ॥टेर॥
तुझ चरणों का सेवक हूँ मैं,
दे दे सुमतिदान जय हो तेरी० १
काल अनादि कुमति वश मैं
खूब हुआ हैरान जय हो. तेरी० २
अन्धकारमय जीवन मेरा,
बीत रहा भगवान जय हो तेरी० ३

उसमे ज्योति आप जगादो,
ज्यों कुछ होवे भान जय हो तेरी० ४
श्री हरिपूज्य सुमतिजिन स्वामी,
करे 'कवीन्द्र' कल्याण जय हो तेरी० ५

श्री पद्मप्रभ जिन स्तवन

(तर्ज—आसावरी)

पद्मप्रभुजी छद्म मिटाकर, मोहे करो निज सानी।
दोषी अदोषी भेद धरे ना, जो होते हैं ज्ञानी रे॥
प्रभुजी मोहे करो निज सानी॥ टेर॥

छद्मस्थावस्था मे मैने, राख निकम्मी छानी।
औरों से सम्बन्ध लगाकर, खूब विलोया पानी रे प्रभुजी० १
परिवर्तन जीवन मे प्रतिदिन, होते हैं आसानी'
पहुचाती हैं भारी सद्मे, उनसे हुई निशानी रे प्रभुजी० २
अपनी बात कहू मैं किसको, कहना है नादानी।
काल लब्धि परिपाक हुए से, प्रकटेगी सुखखानी रे प्रभुजी० ३
जश अपजश की बातें करते, लोक सभी मनमानी।
नदी नाव सयोग जानकर, सब बाते विसरानी रे प्रभुजी० ४
श्री हरिपूज्य प्रभु तुही हैं, अशरण शरणविधानी।
तातें 'दिव्य कवीन्द्र' सुनाता, अपनी राम कहानी रे प्रभुजी० ५

श्री सुपार्श्वजिन स्तवन

(तर्ज—दीन के दयाल)

श्री सुपास गुणविलास, दास आश पूर।
दास आश पूर, प्रभु दास आश पूर॥ टेर॥

करम पाश त्रिविध त्रास, नाथ कर तू दूर ।
चरण पास दो निवास, पूर खूब नूर ॥
पूर खूब नूर प्रभु दास आश पूर १

विनंति खास करुं प्रकाश, प्रेम से हजूर ।
बोध का विकाश कर, कुबोध नाथ चूर ॥
कुबोध नाथ चूर प्रभु दास आश पूर २

"हरि कवीन्द्र" पूज्य प्रभु, सुपास चरण धूर ।
नित्य गगन घोपि बजे, मंगल दिव्य तूर ॥
मंगल दिव्य तूर प्रभु दास आश पूर ३

श्री चन्द्रप्रभजिन स्तवन

(तर्ज–मारवाड़ीजिला)

चन्द्रप्रभुजिन चन्द्र नमो सुखकंदा रे. सब फंद विसार ।
नयनानन्द अमन्द हरे दुःख द्वंदा रे सुजाण ॥१॥

चन्द्र सुलाञ्छन श्वेत सुवर्ण विराजे रे, जिनराज अपार ।
दर्शन गुण दर्शन निर्मल आनन्दा रे सुजाण ॥२॥

कारण जोगे कारज सिद्धि पावे रे, स्व स्वभावे निरधार ।
तन्मय अशठ सरल थिर सेवक वंदा रे सुजाण ॥३॥

प्रभु मुख शारद चन्द्र सुधा वरसावे रे, हरसावे नरनार ।
नयन कटोरे भर पीवत निर्द्वन्दा रे सुजाण ॥४॥

"हरि कवीन्द्र" प्रभु चरण शरण मैं पाया रे,
तज माया चार ।
चाहूं नहीं अब नर सुरपद धरणीन्दा रे सुजाण ॥५॥

श्री सुविधिजिन स्तवन

(तर्ज-आसावरी)

रे स्वामी सुविधि अरज सुन लेना,
सहज समाधि देना रे स्वामी० ॥ टेर ॥
अविधि पूरण दुविधा दिल की, मेरी दूर हटा दो ।
सुविधि भाव रुचि ज्यों प्रगटे, त्यों शुभ बोध पढ़ा दो रे ॥
स्वामी० १

किसविध चचल चित्त अचचल होय रमे निज घर में ।
कुगति विधायक बहु दु ख दायक, विविध विषय से विरमे रे॥
स्वामी० २

तुम शासन मे भी हे स्वामी, मेरी योग चपलता ।
शान्त न होगी तो फिर होगी कैसे पूर्ण सफलता रे ॥
स्वामी० ३

सुखसागर में भी जो दु खिये, सुख का लेश न पावे ।
दोनों भाव विचारे तब तो, दोष उभय मे आवे रे ॥
स्वामी० ४

दूषण दूर टरे वैसा ही, मुझको पन्थ बताओ ।
श्री हरिपूज्य परम पद पाऊ, कीर्ति "कवीन्द्र" सुगाओ रे ॥
स्वामी० ५

श्री शीतलजिन स्तवन

(तर्ज-पन्थीड़ा सदेशो)

शीतलनाथ सनाथ मुझे कर दीजिये,
भवसागर में पकड़ो मेरा हाथ जो ।
मे अनाथ अशरण तुम चरणों मे पड़ा,
निज सेवा मे रखिये मुझको साथ जो ॥ १ ॥

तुम शीतल मैं दुःख संतापित आतमा,
तुम गुणधारी मैं निर्गुण सरताज जो,
तुम अनंत ज्ञानी अज्ञानी मैं प्रभो !
नाथ दया कर तोड़ो अंतर आज जो ॥ २ ॥

सेवक वत्सल सबल स्वामी संसार में,
"हरि कवीन्द्र" कीर्तित पदधारी आप जो ।
सेवक की सविनय विनति सुन लीजिये,
निज निज पर सेवा दीजे माँ बाप जो ॥ ३ ॥

श्री श्रेयांसजिन स्तवन

(तर्ज—या इलाही)

नाथ श्री श्रेयांस सेवा दीजिये,
सेवकाई की परीक्षा कीजिये ॥ टेर ॥

है लगन तुमसे लगी संसार में,
निज महिर दौलत नजर कर दीजिये. नाथ० १

ये सितमगर कर्म करते हैं सितम,
दर्द दिल की आह को सुन लीजिये. नाथ० २

आपसा दानी न दुनिया में मिला,
है परेशानी इसे हर लीजिये. नाथ० ३

आपके दरबार में जो आगया,
पा गया सब कुछ वही तो दीजिये. नाथ० ४

"हरि कवीन्द्रो" से सुकीर्तित नाथ है !
ओर कुछ चाहूं न सेवा दीजिये. नाथ० ५

श्री वासुपूज्य जिन स्तवनो

(तर्ज—जमुनाजी में खेले)

वासुपूज्य अमरपति पूज्य नमो
जिनराज प्रभु वासुपूज्य नमो ॥ टेर ॥

जिनपूजा से जन पूज्य बने,
पूजा हित त्रिकरण शुद्ध नमो वासु० १

है शुद्ध तत्त्व जिनदेव प्रभु,
सतसग अपूरव हेतु नमो. वासु० २

जिन नाम थापना द्रव्य भाव,
निक्षेपा निज हितकार नमो वासु० ३

है मूल हेतु अध्यातम का,
परमातम प्रतिमा ध्यान नमो वासु० ४

सुखसागर श्री भगवान प्रभु,
नित "हरि कवीन्द्र" कीर्तित प्रणमो वासु० ५

श्री वासुपूज्यजिन स्तवन–२

(तर्ज–मेरे मौला)

वासुपूज्य प्रभु जग जय जय हो
जयादेवी के नन्दन, जय जय हो ॥ टेर ॥

आपके वर पचकल्याणक पुनित नगरी यही।
चम्पा अकम्पित भावसे कल्याण को प्रगटा रही।
स्वामी तीरथपति, तुम जय जय हो वासु० १

यह जन्मभूमि, आपकी जो भव्य-जन, हैं भेटते।
वे पुनर्जन्म स्वय अपना सहज में मेटते।
महिमा आपकी यह प्रभु जय जय हो वासु० २

आश्चय हैं जिन आपके जो पञ्चकल्याणक हुए।
वे अनन्तानन्त कल्याणक जनक जगमें हुए।
प्रभु अद्भुतता यह जय जय हो. वासु० ३

पर अपेक्षित पूज्यता से दूर रहते आप है।
पूज्य पर निज नाम से गुणधाम से प्रभु आप हैं।
तुम नाथ अलौकिक जय जय हो. वासु० ४

इन्दु नवनिधि चन्द्रवत्सर शुक्ल फाल्गुन पंचमी।
दिव्य दर्शन आपके पा की निकट गति पंचमी।
गावें "हरि कवीन्द्र" प्रभु जय जय हो. वासु० ५

श्री विमलजिन स्तवन

(तर्ज—मेरे मौला)

प्रभु विमल विमल मुझे कर देना
प्रभु कर्मों का मल मेरा हर लेना ॥ टेर ॥

है अनादि का लगा जो आतमा में कर्ममल।
पा रहा हूं दुःख इससे क्या करुं जो हूं निवल।
मुझ में नाथ ! प्रवल वल भर देना प्रभु० १

ज्ञान दर्शन चरण वीरज आतमा में जो रहें।
कर्म मल मैले हुए निस्तेज वे भी हो रहें।
उनमें तेज पुनित प्रभु भरदेना. प्रभु० २

आपमें जो है प्रकट स्वामी स्वभावदशा रही।
कर्ममल से मलिन मैंने नाथ वह पाई नहीं।
कैसे पाउं दशा वो बतादेना प्रभु० ३

द्रव्य गुण पर्याय पूर्ण अशुद्ध हैं मेरे सभी।
शुद्धता के पुष्ट हेतु भी नहीं पाये कभी।
मिले आप मुझे शुद्ध करदेना. प्रभु० ४

"हरि कवीन्द्रों" से सुकीर्तित विमलता है आपकी।
जब मिटाती है हमेशा कर्ममल सन्ताप की।
मेरा कर्म सन्ताप प्रभु हरलेना प्रभु० ९

श्री अनन्तजिन स्तवन

(तर्ज-आधार मेरे)

अनन्तनाथ स्वामी, आनन्द आनन्द कार
कार मेरे प्यारे आनन्द० ॥ टेर ॥

कर्म अनन्त दल दूर हटाया, ज्ञान अनत भण्डार,
भण्डार मेरे प्यारे आनन्द० १

धर्मादि द्रव्य प्रदेश अनता, पर्याय अनत उदार,
उदार मेरे प्यारे आनन्द० २

सम्पूर्ण जाने जैसे हैं वैसे, जाऊ प्रभुकी बलिहार,
बलिहार मेरे प्यारे आनन्द० ३

मेरी दशाभी छानी नहीं है, जाने जगत भरतार,
भरतार मेरे प्यारे आनन्द० ४

दीन दुखी हू पर मैं न मागु, प्रभुजी दुःख सहार,
संहार मेरे प्यारे आनन्द० ५

दुख सहन की शक्ति मैं मागु, मांगु मे दर्शन श्रीकार,
श्रीकार मेरे प्यारे आनन्द० ६

सुखसागर भगवान प्रभुजी, श्री हरिपूज्य आधार,
आधार मेरे प्यारे आनन्द० ७

"कवीन्द्र" कीर्तित दाता अनन्तजिन,
इतनी लो विनती स्वीकार,
स्वीकार मेरे प्यारे आनन्द० ८

श्री धर्मनाथजिन स्तवन

(तर्ज—काली कमली)

धर्मनाम गुण वाले, तुमको कोटि प्रणाम ॥ टेर ॥
वत्थु सहावो धम्मो स्वामी, दिखलाया तुमने शिरनामी.
खामी हरने वाले तुमको कोटि प्रणाम ॥ १ ॥

आतमधर्म तुम्हीने पाया, औरों ने जग भ्रम फैलाया ।
भ्रम को हरने वाले तुमको कोटि प्रणाम ॥ २ ॥

आतम धर्म विना नर भटके, धर्म धर्म कर पद पद अटके ।
अटक मिटाने वाले तुमको कोटि प्रणाम ॥ ३ ॥

स्याद्वाद सत्संग विनानर, निजघर तजकर जावे परघर ।
घर दिखलानेवाले तुमको कोटि प्रणाम ॥ ४ ॥

"हरि कवीन्द्र" कीर्तित जो पाऊं, धर्म आपका नितगुण गाऊं ।
गुणमणि देने वाले तुमको कोटि प्रणाम ॥ ५ ॥

श्री शांतिनाथ जिन स्तवन

(तर्ज—महावीर तुम्हारी)

प्रभु शांति जिनेश्वर स्वामी निजपद रामी जगदाधार ॥टेर॥
जयकर भयहर अभिरामी,
तुम चरण शरण गुण धामी ।
मैं आयो हूं शिरनामी,
तुम विन कोई नहीं आधार. प्रभु० १

मैं खोकर निज आजादी,
कर निज धन की बरबादी।
बस भटका काल अनादि,
पाये दुर्गति दुख अपार प्रभु० २

घूणाक्षर न्याय समाना,
पूरव कृत पुण्य विधाना।
तुम दर्शन दिव्य खजाना,
पाया अब आनन्द अपार प्रभु० ३

मेरी सब भव भय भ्रान्ति,
अरु आज समूल अशान्ति।
मिट प्रकटी है सुखशान्ति,
पाया अब निर्भय अधिकार प्रभु० ४

सुखसागर शान्ति जिणन्दा,
भगवान परम सुखकन्दा।
"हरिपूज्य सुदिव्य कवीन्दा"
गावें भावे जय जयकार प्रभु० ५

श्री कुन्थुनाथजिन स्तवन

(तर्ज—मनडु किमही न)

कुन्थुनाथ सुखकारी रे जिनवर, आतमपद समझावे।
दर्शन करते भविजन भावे, परमातमता पावे रे जिनवर टेर

वर्णगन्ध रस स्पर्श विहीना, आतम आप अरूपी!
भव भव भटकत कर्म सयोगी,
हो गया नाना रूपी रे जिनवर० ॥ १ ॥

प्रगट विभाव दशा भववासे, जब लौ दूर न होवे ।
तब लौ चेतन निजधन बिन नित,
दुर्गति दुख से रोवे रे. जिनवर० ॥ २ ॥

आत्म असंख्य प्रदेशे पूरण, परमानन्द समावे ।
निज स्वभाव रमण करनेसे,
व्यक्त वही हो जावे रे. जिनवर० ॥ ३ ॥

रागद्वेष विरहित परिणति से, वीतराग गुणठाणी ।
"हरि कवीन्द्र" सुकीर्तित होकर,
परणे शिव पटराणी रे. जिनवर० ॥ ४ ॥

श्री अरनाथजिन स्तवन

(तर्ज—आसावरी)

अर जिनवर जयकारी रे वंदो अर० ॥ टेर ॥
द्रव्य भाव अरि मार भगाये, चक्री तीर्थंशपद धारी ।
षट्खंडजित आखंडलपूजित,
वीतराग अविकारी रे. वंदो अर० १

समवसरण प्रभु शरण भविकजन, भवोदधि पार उतारी ।
अतिशयमहिमा महाप्रतिहारज,
दर्शन दर्शनकारी रे वंदो अर० २

जिन दर्शन सुखसागरलीना, वे भगवान नरनारी ।
"हरि कवीन्द्र" कीर्तित प्रभु अरजिन,
आत्म प्रकाशन कारी रे. वंदो अर० ३

श्री मल्लिनाथजिन स्तवन

(तर्ज–प्रभु धर्मनाथ)

मल्ली जिनशासन भारी, भविजीव सकल सुखकारी ॥टेर॥
प्रभु जीवन घटना वोघे, नरनारी शिवपुर सोघे ।
समतुल्य होवे अविकारी,
परमातम पद अधिकारी मल्ली० १

प्रत्यक्ष परोक्ष प्रमाणे, निश्चित रेखा प्रभु ताणे ।
है भूमि पड़ी तलवारी,
लें वीर पुरुष या नारी मल्ली० २

नवमें गुणठाणे आवे, सत्ता से वेद खपावे ।
क्रम से हो शिव सचारी,
तव एक रूप नर नारी मल्ली० ३

नयवादी मत एकान्ती, फैलावे जगमे भ्रान्ति ।
प्रभु स्याद्वाद जयकारी,
नयवादी भ्रान्ति निवारी मल्ली० ४

सुखसागर श्री भगवाना, हरिपूज्य अचल गुणवाना ।
"सुकवीन्द्र" कहे वलिहारी,
भव भव हो शरण तुम्हारी मल्ली० ५

श्री मुनिसुव्रतजिन स्तवन

(तर्ज–पन्थीड़ा सदेशो)

श्री मुनिसुव्रत स्वामी सुव्रत दीजिये,
सुव्रत विन में पाऊ दुख अपार जो ।
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरण की एकता,
सुव्रत पद में पाऊ मै निरधार जो ॥ १ ॥

त्रिविध ताप अपहारक सुव्रत संग में,
आतम रंग अपूरव प्रकटे आप जो।
भवरण रंग विजयकर पाऊं मैं तभी,
प्रभुपद सेवा पाऊं मैं निष्पाप जो ॥ २ ॥

जीवन मरण दशा भी सुव्रत साथ में,
सुव्रत ही हो गति मति प्राण आधार जो।
योग अवंचक भावे सुव्रत साधना,
करते प्रगटे अनहद सुख भण्डार जो ॥ ३ ॥

गिरि वन गहन विजन सरिता सागर तटे,
देश विदेशे राखुं सुव्रत ध्यान जो।
श्रीमुनि सुव्रत स्वामी मानुं मैं तभी,
सार्थक अपना रसमय ज्ञान विज्ञान जो ॥ ४ ॥

सुव्रतसुव्रत सुव्रत सांसोसांस में,
परिणत जीवन उन्नति हेतु पाऊं जो।
प्रभु कृपा आतमवल के उपयोग से,
"हरि कवीन्द्र" कीर्तित चिन्मय हो जाऊं जो ॥ ५ ॥

श्री नमिनाथ जिन स्तवन

(तर्ज-मैं आया)

श्री नमि जिनवर दर्शन करके दर्शन पाऊं मैं
वस तीन मोहनी प्रथम चोकड़ी दूर भगाऊं मैं ॥ टेर ॥

श्री नमि नमावे अंतर शत्रु, मोह महाभट को।
जिनदेव दयावल पाकर के अव उसे नमाऊं मैं. श्री नमि० १

भव बीजांकुर जनक जगतमें, रागद्वेष ही है।
हो अप्रमत्त उनको भी जड़से शीघ्र उड़ाऊं मैं. श्री नमि० २

श्री वीतरागपद अनुपम ज्योति, प्रकटित होने से ।
प्रभु सत्य सनातन परमातमता निजमें पाऊ मैं श्रीनमि० ३
हो क्षीणकर्म अजरामर अक्षय अपुनर्भव पदमें ।
श्री नमि जिनवर श्री सिद्ध ज्योति में
ज्योत मिलाऊ मै. श्री नमि० ४
यों "हरि कवीन्द्र" कीर्तित पावन प्रभुश्री नमिजिन सेवा ।
शिवमेवा दे आज सहज ही उसको पाऊ मैं श्री नमि० ५

श्री नेमिनाथजिन स्तवन

(तर्ज–एक सुरत)

क्यों कर छोड़ गयो री शिवादेवीको लाड़लो ॥ टेर ॥
श्याम सलुनो सखी मेरे मन भावनो–हा मेरे०
क्यों कर विसर गयो री शिवादेवीको लाड़लो ॥ १ ॥
जाने थी हूं प्रभु हैं दयालु–हा प्रभु०
निर्दयता कर गयो री शिवादेवीको लाड़लो ॥ २ ॥
पशुओं की प्रभु पीड़ा जानी–हा पीड़ा०
मोहे भुलाय गयो री शिवादेवीको लाड़लो ॥ ३ ॥
भुली भुली जग प्रीत है झूठी–हा प्रीत०
प्रभु समझाय गयो री शिवादेवीको लाड़लो ॥ ४ ॥
झूठी है काया झूठी है माया–हा झूठी०
भेद बताय गयो री शिवादेवीको लाड़लो ॥ ५ ॥
राजुल जावे गढ़ गिरनारे–हा गढ०
जहाँ पर प्रभु गयो री शिवादेवीको लाड़लो ॥ ६ ॥
"हरि कवीन्द्र" कहे नेमिजिन प्रीति–हा नेमि०
अते निभाय गयो री शिवादेवीको लाड़लो ॥ ७ ॥

श्री पार्श्वजिन स्तवन

(तर्ज—मेरे मौला...)

चिन्ता चूर चिन्तामणि पास प्रभो !
मेरे चिंतित अर्थको पूर प्रभो ! टेर

चिन्तामणि तूं नाथ मेरा, विश्वमें विख्यात है ।
चिन्ताहरण है विरुद तेरा, तूं जगतका तात है ॥
अपने दासकी आशको पूर प्रभो ! चिन्ता० १

जब कि तूं चिंतामणि है, मम हृदय भंडार में ।
दारिद्र्य दुश्मन क्यों सतावे, फिर मुझे संसारमें ॥
करो दारिद्र्य मेरा दूर प्रभो ! चिन्ता० २

भगवान श्री हरिपूज्य तूं, मेरा परम आधार है ।
तेरे चरणके शरणमें, जोडे हृदयके तार है ॥
पूरो "दिव्य कवीन्द्र" में नूर प्रभो ! चिन्ता० ३

श्री महावीर जिन स्तवन

(तर्ज—तुम्हें जैनी झंडा...)

प्रभु महावीर हमें भी बना दो ।
निजी वीरमंत्र हमें भी सुना दो ॥ टेर० ॥

जिते सो जैनी होवे, पर हम हारे ।
हमें जिन सच्चे जैनी बनादो ॥ प्रभु० १

महावीर स्वामी, हमारे हो किन्तु ।
हम डरपोक है, डरको मिटादो ॥ प्रभु० २

दशा हमारी हा ! विगड़ रही है ।
विगड़ी दशाको फिरसे बनादो ॥ प्रभु० ३

चलते हुए हम, हैं पथ भूले ।
कृपा कर पथको, नाथ बतादो ॥ प्रभु० ४

ज्ञानी पिता तुम, हम अज्ञानी ।
जरा प्रभु ज्ञानकी, ज्योति जगादो ॥ प्रभु० ५

क्रिया गति मद, हुई है हमारी ।
कर प्रेरणा प्रभु, तेज बनादो ॥ प्रभु० ६

भाई भाई मे हम लडते ।
प्रभु विश्वप्रेमका पाठ पढादो ॥ प्रभु० ७

"हरि कवीन्द्र" कहे, हमें वीरस्वामी ।
सब शक्ति से पूर्ण बनादो ॥ प्रभु० ८

कलश

(तर्ज—तेरे दर्शनकी बलिहारी राग—धनाश्री)

चौवीस जिन सुखकारी गाया चौवीस० टेर

खरतरगणनायक सुखसागर,
गुरु भगवान पद धारी, गाया चौवीस० १

जिन हरिसागरसूरि सद्गुरु,
भव्यजीव उपकारी गाया चौवीस० २

श्री संघ विनती अजिमगज में,
चउमासा जयकारी गाया चौवीस० ३

षट्मास क्षमणादि तप व्रत विधि,
उत्सव विविध प्रकारी गाया चौवीस० ४

उन्नीस सौ बाणु जिन पारस,
जन्मकल्याणदिन भारी गाया चौवीस० ५

हेमेन्द्रोदय कान्तिसागर,
मुनिवर गण सहचारी. गाया चोवीस० ६

गुरुपद सेवी "दिव्य कवीन्द्र"ने,
निजगुण पावनकारी. गाया चोवीस० ७

इतिश्री जिन स्तवन चतुर्विंशतिका समाप्त

* शुभं भवतु सर्वेषाम् *

जिन गुण कीर्तन केलि

(लघु स्तवन संग्रह)

"प्रभुपद में लीनता"

(तर्ज—जमुनाजीमें खेले)

प्रभु चरणोंमें चित लयलीन भयो रे,
लयलीन भयो रे लयलीन भयो रे. प्रभु० टेर

प्रभु-प्रेम-रज्जु भव-अन्धकूप डूबते।
आतम उद्धार हित पायो नयो रे. प्रभु० १

निबिड मोह अन्धकारको निवारणेके हेतु।
अमिट प्रभु ध्यान दीप पाय गयो रे. प्रभु० २

"हरि कवीन्द्र" वन्द्य श्री जिनेन्द्रदेव पाय।
मुक्ति महेल मैं तो जाय चढयो रे. प्रभु० ३

श्री वीतराग स्वरूपसे प्रेम

(तर्ज—ढूंढ फिरा जग सारा २ सिद्धगिरि सामीना मिला)

वीतराग प्रभु प्यारा मुझे प्यारा सुखकारणा ॥ टेर ॥

भवतरु बीज हैं राग अरु द्वेष,
वे जिनके हुए नाश अशेष,
जो हैं ज्योतिरूप विशेष,
गुण हैं अनन्त अपारा, हैं अपारा भवद्वारणा वीत० १

निन्दक वन्दक भेद न धारे,
समपरिणामी जगत निहारे,
मोहराज को मार पछारें,
ज्ञान प्रधान खजाना, है खजाना दुखवारणा वीत० २

जो नहीं जगके कर्त्ता हर्त्ता,
तो भी जो है त्रिभुवन भर्ता,
कारण रूपे जगदुद्धर्त्ता,
निर्मम अरु निर्विकारा, निर्विकारा चित्तधारणा वीत० ३

पुरुषोत्तम शंकर अवतारी,
शस्त्र न अस्त्र न मालाधारी,
पास नहीं जिनके रहे नारी,
जो हैं निज-पदचारी, पदचारी जयकारणा वीत० ४

त्रिभुवन मे नहीं जिनके सानी,
निज पद पावन पुण्य निशानी,
है हरि पूज्य प्रभु सुखदानी,
दिव्य "कवीन्द्र" गुण गाया, गुणगाया सुविचारणा वीत० ५

हृदयकमलमें प्रभुप्रतिष्ठा

(तर्ज—सोई २ सारी०)

कोमल हृदयकमल सिंहासन, सादर प्रभु पधराऊं रे हाँ ॥टेर॥
मिथ्यामति तम दूर करण को,
गुरुगम दीप जलाऊं रे हाँ. कोमल० १
यम नियमादिक पवन करीने,
कलुषित रजको उड़ाऊं रे हाँ. कोमल० २
सुव्रत सुमनस् सहज सुशान्ति,
सुखसंगति विरचाऊं रे हाँ. कोमल० ३
एकातम हो प्रभु प्रियतम सों,
दुविधा दूर भगाऊं रे हाँ. कोमल० ४
"कवीन्द्र" अगोचर सुख दुःखकी सब,
बातें कहके सुनाऊं रे हाँ. कोमल० ५

प्रभुके द्वार पर

(तर्ज—चल २ चमनके बागमें)

मैं आया तेरे द्वार पर कुछ लेकर जाऊंगा,
अपने सुख दुःख की सारी बातें नाथ सुनाऊंगा. मैं ॥टेर॥
जब कि तेरा कहलाता हूँ, मैं सेवक दुनियामें ।
तब क्यों कर अपना जीवन, दुःखमय नाथ बिताऊंगा. मैं० १
तू वीतराग रहता है इससे, यह दुःख पाता है ।
पर तुझको तज मैं औरोंका नहीं दास कहाऊंगा. मैं० २
अपने अनन्त सुख में से मुझको, तू कुछ देदेगा ।
तो "हरि कवीन्द्र" होकर मैं सुखसे नितगुण गाऊंगा. मैं० ३

प्रभु मे ममत्व

(तर्ज—मेरी आहका असिर)

तूही तूही मेरा तूही तूही मेरा,
तूही प्रभु प्राण आधार है मेरा ॥ टेर ॥
जीवन साथी हे नाथ बनादो,
पडा हूँ शरण बनी चरनन चेरा तूही० ॥ १ ॥
ओर प्रपची अनेक मिले पर,
कुछ भी किसीने न दिल को है घेरा. तूही० ॥ २ ॥
नूरे नूरानी मोहनी मूरत,
एक मिला तू हुआ है निवेरा तूही० ॥ ३ ॥
जाती सही नहीं अब तो जुदाई,
तेरी हजूर मे रहे मेरा डेरा तूही० ॥ ४ ॥
खिदमत के काबिल हे नाथ बनादो,
"हरिकवीन्द्र" मिटा दो बखेरा तूही० ॥ ५ ॥

प्रभुसे प्रार्थना

(तर्ज—जमुनाजीमे खेले)

कहो कैसे सुनाऊ, बीती बतियाँ,
बीती बतियां मेरी बीती बतियाँ कहो० ॥ टेर ॥
जिमि जिमि याद मोहे आवत है तिमि तिमि ।
फटत जात है मोरी छतियाँ कहो० १
जानत है प्रभु तुंही बिन कहे बिन सुने ।
दु:खमय मोरी अन्तर गतियाँ कहो० २
सब दु:ख दूर कर अब प्रभु मेरे तुही ।
"हरि कवीन्द्र" करे कीरतियाँ कहो० ३

प्रभु प्रार्थना

(तर्ज—कही हंसना)

न चाहूं आपसे स्वामी, कि मेरा काम करदेना ।
परं शुभ काम कर पाऊं, यही वल प्रेरणा देना ॥ टेर ॥

हजारों विघ्न बाधायें, उपस्थित हो परन्तु मैं ।
कभी होऊं नहीं विचलित, यही वल प्रेरणा देना ॥ न चाहूं० १

करें यश कोई अपयश वा, करुं पर काम जगहित के ।
"कवीन्द्र" आतमा में बस, यही बल प्रेरणा देना ॥ न चाहूं० २

प्रभु प्रार्थना

(तर्ज—गजल)

अपूरव भावना भगवान, सफल मेरी बने ऐसा ।
तरीका अपनी ज्योति का, दिखादे कर दया मुझको ॥टेर॥

तुम्हीं सर्वज्ञ हो सच्चे, सकल संसार के ज्ञाता ।
न मुझ में ज्ञान है कुछ भी;
सिचादे कर दया मुझको ॥ अपूरव० १

सदा दरवार में स्वामी, रहूं सेवक वना ऐसा ।
पुनित पट्टा"कवीन्द्रों"से,लिखादेना सदा मुझको॥ अपूरव० २

प्रभु प्रार्थना

(तज—मेरी आहका असर)

तुम्हें नाथ नैया तिरानी पडेगी ।
तिरानी पडेगी तिरानी पडेगी ॥ तुम्हे० टेर

तरन तारन है विरुद तुम्हारो प्रभु ।
डूवत नैया तिरानी पडेगी ॥ तुम्हे० १

भवसागर में डूबी जो नैया मेरी ।
तो तेरे विरुद में खामी पडेगी ॥ तुम्हे० २
'हरि कवीन्द्र" की यही विनती है ।
मुक्ति नगरियाँ दिखानी पडेगी ॥ तुम्हे० ३

श्री प्रभु प्रार्थना

(तर्ज—तुम्हे नाथ नैया)

आओ प्रभु यहां आओ आना पडेगा,
घन बादल बन आना पडेगा ॥टेर॥
निज पावन पद ज्योति बिजली,
जगमें प्रभु चमकाना पडेगा आओ० ॥ १ ॥
अनुपम दिव्य दया जल अपना
झटपट प्रभु निकसाना पडेगा आओ० ॥ २ ॥
जीवन वन बस सूख रहा है,
उसको प्रभु सरसाना पडेगा आओ० ॥ ३ ॥
हृदय कमल दल मूंद रहा है,
उसको प्रभु विकसाना पडेगा आओ० ॥ ४ ॥
रोग शोक संताप बढा है,
उसे प्रभु शीघ्र हटाना पडेगा आओ० ॥ ५ ॥
सुखसागर प्रभु सुखकी नदियाँ,
पुण्य प्रवाह बहाना पडेगा आओ० ॥ ६ ॥
हरि पूज्येश्वर जिनशासनमें,
शान्ति लहरियाँ चढाना पडेगा आओ० ॥ ७ ॥
विनती "कवीन्द्र" स्वयं सेवककी,
शिवपथ प्रभु दिखलाना पडेगा. आओ० ॥ ८ ॥

स्तवन

(तर्ज—गुलशन में खिलेंगे दोनो जने)

प्रभु आओ मिले हम दोनों जने,
दोनों जने हाँ दोनों जने. प्रभु० ॥ टेर ॥

प्रभु तूं है बादल, मैं हूं विजली,
पानी होकर वहें हम दोनों जने. प्रभु० १

प्रभु तूं है चन्दा, मैं हूं तारा ।
हिलमिल के खिलें हम दोनों जने. प्रभु० २

प्रभु तूं है सूरज, मैं बनुं किरण ।
प्रकाश करें हम दोनों जने. प्रभु० ३

प्रभु तुम हो धागा, फूल वनुं मैं ।
फिर माला बनें हम दोनों जने. प्रभु० ४

प्रभु तू है भौरा, मैं लट छोटी ।
एक रूप वनें हम दोनों जने. प्रभु० ५

प्रभु तूं सुखसिन्धु मैं हूं नदियाँ ।
एक रस वनें हम दोनों जने. प्रभु० ६

प्रभु तूं है काव्य, मैं हूं "कवीन्द्र"
दिव्य रसको बहावें दोनों जने. प्रभु० ७

तेरा एक ध्यान है

(तर्ज—अफसाना लिख रही हूं)

तेरा एक ध्यान है, जीवनमें भगवान पावन तेरा० ॥ टेर ॥

हय गय रथ चाह नहीं हैं, तन धनकी चाह नहीं हैं ।
तेरा एक ध्यान है, तेरी ही चाह रही है ॥ तेरा० १

नहीं शासन आसन चाहूं, मैं रामा रमा न चाहूं।
तेरा एक ध्यान है, प्रभु कोर कृपाकी चाहूं ॥ तेरा० २

भक्ति कुछ शक्ति नहीं है, मुक्तिकी युक्ति नहीं है।
तेरा एक ध्यान है, परमातम मेरा तू है ॥ तेरा० ३

तू सच्चा साथी मेरा तेरे चरणोंमें डेरा।
तेरा एक ध्यान है, झूठा है जगका फेरा ॥ तेरा० ४

तुम बिन मन चैन न पावे, तन मन अर्पण कर पावे।
तेरा एक ध्यान है, "हरि कवीन्द्र" आतम भावे ॥ तेरा० ५

प्रभुजी आजो मारे देश

(तर्ज—झटपट छाई नागरवेल)

झटपट आज्यो म्हारे देश प्रभुजी झटपट० ॥ टेर ॥

थे म्हें रमता एकठा काई, इण संसार मझार।
अब थे तो दूरे गया काई, परमातम पद धार. प्रभुजी० १

भवबन में भटकू घणो काई, पाऊं दुःख अपार।
प्रीत पुराणी जानके काई, करजो म्हारी सार. प्रभुजी० २

सुना मंदिर मालियां काई, सुनो म्हारो देश।
सुनी म्हारी आतमा काई, था बिन हे परमेश प्रभुजी० ३

थे निसनेही हो गया काई, वीतराग अरिहंत।
मो विरहो किणविध मिटे काई, भाखो श्रीभगवंत प्रभुजी० ४

सुखसागर संसार में काई, समरण सिरि जगपाल।
जिन हरिपूजित आतमा काई, धरे 'कविन्द्र' ध्यान. प्रभुजी० ५

जिनदर्शन महिमा

(तर्ज—घटा घन घोर घोर)

देखो मेरी ओर ओर, करो प्रभु कृपा कोर.
गरीब नवाजा ॥ टेर ॥

सब दर्शन में जिन दर्शनकी. महिमा अपरंपारी ।
जिन दर्शन आराधन से जनहो जिन सम जयकारी ॥
मनुष्य जनम सार, दर्शन अधिकार
पाऊं पद ताजा, गरीब नवाजा देखो० १

पर दर्शन में एक प्रभुकी. रही कल्पना जारी ।
प्रभु अनन्त है जिन दर्शनमें, दर्शनकी बलिहारी ॥
साधे सोई आतमा, होते परमातमा,
पाते शिव राजा, गरीब नवाजा. देखो० २

जिन हरिपूज्य परम गुरु पावन, जिनदर्शन में पाया ।
नित "कवीन्द्र" गाऊं गुण कीरति, निर्मल मन वच काया ॥
वही पद पाऊं आज, सुनो प्रभु जिनराज,
करो यही काजा. गरीब नवाजा. देखो० ३

मनको प्रबोध

(तर्ज—रसिया की)

जिनवर दरिसण पाय मनवा ! तूं क्यों थिर नहीं थाय ॥टेर॥

जिनवर दरिसण दुर्लभ जाणो,
वार वार मिलणो नहीं टाणों,
हां रे ! थारो आयुष एले जाय मनवा ! तूं क्यो० १

भोग रोग से भरे पडे है,
मारग दुश्मन घने अडे हैं,
हाँ रे! थारी चचलता नवि जाय मनवा! तू क्यों० २

भज थिर हो हरिपूज्य प्रभुको,
ज्ञान ज्योतिसे व्याप्त विभुको,
हाँ रे! थारी कीर्ति "कवीन्द्र" जु गाय मनवा! तू क्यों० ३

मोक्षके द्वार

(तर्ज—हम गाये खुशीके गीत)

हम आये प्रभुके द्वार, द्वार शिवपुर के उघड़ गये हो,
अनन्त सुखके सागर निजमे आज उमड़ गये हो,
कि दुर्गति ताले जुड़ गये ॥ टेर ॥

तीरथ तारणहार जड़ता मिटाई देत,
भावुक की भावनामे ज्योतिया जगाई देत,
हो वहिरातमके भाव आज अन्तरमें मुड़ गये हम आये० १

प्रभु रूप लख निज रूपको लखावे हम,
करम भरम भेद खेदको मिटावे हम,
भये अभय हम आज मोह नृप पाव उखड़ गये हम आये० २

जिन हरिपूज्य प्रभु चरण शरण से,
छूट गये सही हम जनम मरण से,
हो यों 'कवीन्द्र" परमातम हो हम ऊचे चढ गये हम आये० ३

सिद्धगिरि स्तवन

(तर्ज—आधार मेरे प्यारे)

तीरथ है तारणहार, द्वार मेरे प्यारे तीरथ० ॥ टेर ॥
नामे भी सच्चा, ठवणा भी सच्चा,
सच्चा है द्रव्ये स्वीकार कार मेरे प्यारे तीरथ० १

भावे भी सच्चा, तीरथ ऐसे,
सच्चा है चारों प्रकार-कार मेरे प्यारे तीरथ० २

हेतु हेतुमद् . विचारणा में
चेतन के चारों आधार-धार मेरे प्यारे तीरथ० ३

ठाणांग भासे, भव्योंको वासे.
बूझे न जो है गमार-मार मेरे प्यारे. तीरथ० ४

चारों गुणानुयोगी निक्षेपा,
वन्दे चतुर विचार-चार मेरे प्यारे. तीरथ० ५

सिद्ध गिरीश्वर, सिद्धिको दाता,
देता है सुख अपार-पार मेरे प्यारे. तीरथ० ६

वो हरिपूज्य "कवीन्द्र" सुवन्दित,
वन्दूं मैं वार हजार-जार मेरे प्यारे. तीरथ० ७

सिद्धाचल स्तवन

(तर्ज—चाहे तारो या न तारो)

चाहूं बना रहूं मै, तीर्थेश के शरण में,
प्राणान्त भी जो हो तो, तीर्थेश के शरण में ॥टेर॥

शत्रुंजयी विमल जल, धारा समान धारा।
होकर वहा करूं मैं, तीर्थेश के शरण में ॥ चाहूं० १

रायण के रुंख जैसे, शुभ भाव नम्र होकर ।
जीवन सफल बनाऊं, तीर्थेशके शरण में ॥ चाहूं० २

वर सूर्यकुण्ड जैसे, गम्भीर तापहारी ।
रसपूर्ण हो रहूं मैं, तीर्थेश के शरण में ॥ चाहूं० ३

नवटुंक के शिखरसम, हो निष्प्रकम्प योगी ।
साधूं स्वसाध्यको मैं, तीर्थेशके शरण में ॥ चाहूं० ४

होऊ "हरिकवीन्द्रों" के भी अगम्य तन्मय।
सिद्धाचल स्वभावी, तीर्थेश के शरण मे॥ चाहू० ५

वीरप्रभु स्तवन

(तर्ज—हेरी यशोदा मैया)

महावीर स्वामी मेरे महावीर स्वामी, ज्योति जगादो मेरे०
निर्बल हू बलशाली तुम्हीं हो, महावीर स्वामी मेरे० ॥टेर॥

मोह अधियारी छाई, मैने नहीं राह पाई।
भटक्यो अनादि अब, प्रकटी पुन्याई॥
प्रभु वाणी सुनी मैने कुछ राह पाई महावीर० १

शक्ति अनती मेरी, कर्मोने घेरी।
प्रभुके दरस झट, प्रकटी न देरी॥
परमातमता पद निकट लगेरी महावीर० २

उमड़ा सुखोंका सागर, भगवान पद पाकर।
हरिपूज्य होकर होऊ, सिद्ध गुणाकर॥
आतम ज्योति जगाऊ "कवीन्द्र" उजागर महावीर० ३

वीरप्रभु स्तवन

(तर्ज—अब तेरे विना कौन मेरा कृष्ण)

वन्दू मे महावीर मेरे पीर हरैया,
आधार एक विश्वके उद्धार करैया॥ टेर०॥

शक्ति नहीं है पास में छाई है बुजदिली।
इससे ही मेरी आतमा रहती है अधखिली॥
शक्ति दो मुझे नाथ महाशक्ति धरैया वन्दू० १

माया महा अन्धेरकी छाया है छा रही।
खाता हूं ठोकरें न मुझे राह मिल रही॥
पथ आओ दिखाओ प. मेरे ज्योति जगैया. वन्दूं० २

सुखसिन्धु है भगवान तूंही मेरा सहारा।
"हरिकवीन्द्र" चाहे दिखादो भवसिन्धु किनारा॥
मेटो अनादि कालका यह भूल भूलैया. वन्दूं० ३

पार्श्वजिन स्तवन

आवोजी आवो प्रभु पास, अपना अन्तर खोलो,
अन्तर खोलो प्रभु पास, कुछ तो मुखसे बोलो ॥टेर॥
विविध ताप संताप, प्रभुजी मुझे सतावे,
करके दया मुझपे नाथ, दर्शन अमृत ढ़ोलो. आवोजी० १

पाऊं मैं शान्ति समाधि, दूरी होय उपाधि,
सुनलो गरीब निवाज, अब तो अन्तर खोलो. आवोजी० २

समता रसभण्डार, स्वामी गुणके सागर,
देकर निज गुण अंश, भरदो मेरो झोलो. आवोजी० ३
वालाजी पास जिणन्दा, तुम गुण गाय "कवीन्द्रा",
मेरी लो सुध बुध आप. मै बालो भोलो. आवोजी० ४

पार्श्वनाथ स्तवन

पारस पार उतारे, हमें इस भवजल से ॥टेर॥
पार्श्वप्रभु तीर्थंकर प्यारे, भविजनके है तारणहारे,
ध्यावो सदा मन निर्मलसे. पारस० १

प्रभुदर्शन है आतम दर्शन, आतमदर्शन अमृत वर्षण,
खिले हृदय कज परिमलसे. पारस० २

कमठ महाशठ हठ प्रभु मेटे, नाग नागपति पद्वी भेटे,
हटे करम हाँ निरमल से पारस० ३

अशरण शरण चरण प्रभु वरके,
दु ख दरिद्रयोरे सुखसागर के,
कर निज अर्पण निश्चल से पारस० ४

जिन हरिपूज्य नमो प्रभु पारस,
पी 'कवीन्द्र" अमृत प्रभुगुण रस,
दूर हटे दु ख दल दलसे पारस० ५

पार्श्वजिन स्तवन

(तर्ज–गोपीचद लडका)

मन मन्दिर में आप पधारो प्रभु पार्श्वजी-
दिल मन्दिर मे आप विराजो पारसनाथजी ॥टेर॥

आप विना सुनु मनमन्दिर, आज भयकर भासे।
सुना घर में जग सहु जाणे,
स्वामी भूत विलासे रे मन० ॥ १ ॥

घर मालिक घर नही सभाले, मिले उजाडणहारा।
घर उजडया सु होसी साहिब,
अपकीरति विस्तारा रे मन० ॥ २ ॥

मैं सेवक स्वामी आशामे, अब तक वचा रहा हु।
आशा ही आशा में अब तो,
वस लाचार भया हु रे मन० ॥ ३ ॥

सुखसागर भगवान है तु तो, श्री हरिपूज्य प्रधाना।
स्वामी समता क्यों कर पाऊ,
मे हु निपट निदाना रे मन० ॥ ४ ॥

"दिव्य कवीन्द्र" सुकीर्तित व्हाला, पार्श्वजिनेश्वर आओ ।
निज सेवक जन आशा पूरो.
मनमंदिर कुं वसावो रे. मन० ॥ ५ ॥

पौष दशमी स्तवन

नित नमुं पारस प्रभु जिनराज,
जिन की महिमा अनुपम आज ॥ टेर ॥
पौष वद दशमी दिन धन धन,
जगमें जनमें जिन जग तात. नित० १
जनम कल्याणक परम पुनीता,
काशी नगरी धन धन धाम. नित० २
अश्वसेन नृप वामाराणी,
धन जिन जनक जननी विख्यात. नित० ३
कुटिल कमठ मद हारक तारक,
नाग नागनी के अभिराम. नित० ४
"हरि कवीन्द्र" सुकीर्तित मैंने,
पायो धन जिन दर्शन सार. नित० ५

पार्श्वप्रभु स्तवन

आश प्रभु पूरे, सिरी चिन्तामणि पास. ॥टेर॥
प्रभु दरसन दुःख दूर निवारे,
रहता न कर्मों का त्रास. आश० १
प्रभु दरस बिन भवमें भटकते,
बढ़ता है मोह का पाश. आश० २
काया माया झूठी जगत की,
साची है दर्शन की वास. आश० ३

प्रभु की ज्योत जीवन में होती,
देती है पुण्य प्रकाश आश० ४
सुखसागर भगवान कृपा से,
होता है विद्या विकाश आश० ५
जिन हरि पूज्य प्रभु पार्श्व फलोदी,
पूरे "कवीन्द्र" की आश आश० ६

श्री नेमिजिन स्तवन

(तर्ज—छोटे से वलमा)

भूलो मत वलमा नेमि श्याम, ये पूरव भव प्रीति,
व्याहन आये गये लौट, यह कैसी है रीति॥टेर॥

पशुओं की सुनके पुकार, वलमा करुणा लाई,
मुझको विसराई गये श्याम, सोचो क्या है नीति भूलो० १

दर्शन कर पाई नहीं नाथ, वस इतना सुन पाई,
श्याम गये गिरनार, मै तो रहगई रोती भूलो० २

विरहा की दिल मेरे आग, वलमा खूब लगाई,
कैसे बुझाई कहो जाय, मुझको वलमा वीती भूलो० ३

अब ना रही कोई आश, मेरे आप सहाई।
आई मे वलमा तोरे पास, दर्शन अमृत पीती भूलो० ४

धन राजुल अवतार, प्रभु से प्रीति लगाई।
माया छिटकाई "सुकवीन्द्र" गावे गुणमय गीती भूलो० ५

नेमिजिन स्तवन

(तर्ज—कव्वाली)

अय नेमि ! प्राण प्यारे, नयनो के अय सितारे,
माता शिवा दुलारे, अय नेमि प्राण प्यारे ॥टेर॥

है प्रीति आठ भव की, तुम तोड़ के उसे भी ।
गिरनार जा रहे हो, अय नेमि प्राण प्यारे. ॥ १ ॥

दिल में सदैव मेरे, है चाह दर्शनों की ।
क्यों दूर हो रहे हो, अय नेमि प्राण प्यारे. ॥ २ ॥

पशुओं को आपने जब, जीवन दिया दयालो ।
मेरा मिटा रहे क्यों, अय नेमि प्राण प्यारे. ॥ ३ ॥

मुझ से हुआ तुम्हारा, सम्बन्ध विश्व में जो ।
तोडे न टूटने का, अय नेमि प्राणप्यारे. ॥ ४ ॥

पावन प्रभु चरण में, अनुगामि भावनासे ।
जीवन करु समर्पण, अय नेमि प्राणप्यारे. ॥ ५ ॥

सुखसिन्धु हे सुभगवन्, हरिपूज्य आप मेरी ।
सुनिये करुण कहानी, अय नेमि प्राणप्यारे. ॥ ६ ॥

प्रभु मानो या न मानो. मेरे लिये तुम्हीं हो ।
"सुकवीन्द्र" वन्द्य पदवी, अय नेमि प्राणप्यारे. ॥ ७ ॥

स्तवन

(तर्ज—आसावरी)

प्रभुजी मैं पापी हूं पूरा, पाऊं दुःख भरपूरा जिनजी० ॥टेर॥
हिंसक झूठा चोर कुकर्मी, महापरिग्रह धारी ।
तारक तूं तीर्थंकर शंकर, तीन लोक हितकारी ॥ प्रभुजी० १

क्रोधी मानी मायी लोभी, अधमाधम अविचारी ।
पापी हूं परवा मत करना, अपना विरुद विचारी ॥ प्रभुजी० २

अधिकारी हूं मै दुर्गति का, तेरा शरणा धारी ।
मैं डूबा तो तेरी निन्दा, होगी हे अविकारी ॥ प्रभुजी० ३

द्रव्य क्षेत्र वर काल भाव ये सुधरेंगे जलचारी ।
तब होऊगा शुद्धाचारी, बहिरातमता टारी ॥ प्रभुजी० ४

अन्तर आतम अविचल भावी, परमातम पदधारी ।
'हरि कवीन्द्र" मन सुमन खिले,
जय जय तू जयकारी ॥ प्रभुजी० ५

दीपावलि स्तवन

(तर्ज-मै वन की चिड़िया)

हे वीर ! विरह दुख सहा न मुझसे जाई,
था स्नेह आपका मुझपर अति सुखदाई रे ॥ टेर ॥

मै इन्द्रजाल माना था, लड़ना प्रभु से ठाना था ।
स्वामी प्रभाव पर वे ही भाव,
मेरे समस्त मिट जाई रे. हे वीर० १

मे आप रूप भूला था, मिथ्यात्व झूले झूला था ।
प्रभु आप दर्श होते प्रकर्ष,
समकित ज्योति प्रगटाई रे हे वीर० २

प्रभु सेवा थी सुखकारी, प्रभु दर्शन भव भय हारी ।
आनन्द कन्द सब दुख द्वन्द,
आमूल चूल विघटाई रे हे वीर० ३

मेरे प्रभु केवलज्ञानी, तीर्थंकर सब गुणखानी ।
अमृत समान वाणी प्रमाण,
भवि प्राणी सुन शिव जाई रे हे वीर० ४

प्रभु वीतराग बड़भागी, मैं तो हू पूरा रागी ।
तज राग भाव रमते स्वभाव,
गोतम शिवपदवी पाई रे हे वीर० ५

जब जब शंका होतीथी, प्रभु कृपा तभी होती थी ।
सविवेक एक उत्तर अनेक,
भ्रम सुनते मम मिट जाई रे. हे वीर० ६

प्रभु सुखसागर भगवाना, श्री जिनहरि पूज्य प्रधाना ।
गौतम गणेश, समरो विशेष,
सेवा "कवीन्द्र" मन भाई रे. वीर० ७

सीमन्धरस्वामी स्तवन

(तर्ज–प्रभातिक कड़खा)

परम परमेश्वरा स्वामी सीमन्धरा,
मम विनय वन्दना को स्वीकारो ।
पूर्वकृत पाप से आप से नाथ मैं,
दूर इस भरत में हूं निहारो ॥ परम० १

आपके निकट में पहुंचने का अतट,
पन्थ है दुःखमय देव मेरा ।
दरस हित तरसता दीन बल हीन मैं,
भरत में ही धरुं ध्यान तेरा ॥ परम० २

द्रव्य गुण सर्व पर्याय को सर्वथा,
देखते दिव्य निज ज्ञान द्वारा ।
पतित दुष्कर्म से चलित निज धर्म से,
हूं मुझे हे प्रभो ! क्यों विसारा ॥ परम० ३

कपटमय मोह नटराज मुझको महा–,
विकट भवरंग में नित नचावे ।
नाचते थक गया आज सिरताज मैं,
फिर नहीं क्यों मुझे तू बचावे ॥ परम० ४

अधम हूं मै पर स्वामी तुझ दास हू,
क्यों न अरदास मेरी विचारे ।
तार सुखसिन्धु भगवान् हरिपूज्य ! तुझ,
विरुद तारक "कवीन्द्रों" उचारे ॥ परम० ५

नवपद स्तवन

(तर्ज–इक सुग पायो मैने)

नवपद भज मना नवपद भज मना,
नवपद भज मना रे-कुमतियाँ टारे पापकी ॥ टेर ॥

अरिहत सिद्ध आचारज पाठक,
मुनिपद सेवा रे, नाशक होगी भवताप की नवपद० १

दर्शन ज्ञान वो चारित्र तप पद,
भवगद हर देवे रे, आतम शक्ति बे माप की नवपद० २

चचलता तज भज नवपद को,
हाँ कर निजपद को ध्यान, होवेगी सुगति आपकी नवपद० ३

नवपद रग सुरग रमणता,
शुभ गुणश्रेणी रे, फैलेगी अपने नाप की नवपद० ४

सुखसागर नवपद भगवान से,
दु खमय डोरी रे, टूटेगी काम चाप की नवपद० ५

नितप्रति गावो मजुल महिमा,
हाँ श्री हरिपूजित रे, नवपद सच्चे मा बाप की नवपद० ६

श्रीपाल मयणा जीवन नवपद,
कीर्ति "कवीन्द्रों" से रे, प्रकटी है उत्तम छाप की नवपद० ७

स्तवन

(तर्ज—छोड़ बाबुल का घर)

करो प्रभुजी नजर, मेरा होवे गुजर,
मैं हूं आन खड़ा ॥ टेर ॥

तूं है तारन तरन, भव दुःख हरन,
मेरा ओर सहारा कोई नहीं. करो० १

कोई शस्त्र धरें, नारी संग करे.
देव सेवे कई फल पाया नहीं. करो० २

तुझ में राग नहीं, कोई दाग नहीं,
वीतराग तेरा सानी ओर नहीं. करो० ३

सुखसिन्धु तुं ही भगवान तुं ही,
परमातम आतम रूप तुं ही. करो० ४

"हरि कवीन्द्र" कहे, तेरे शरण रहे,
वे तो लाख चौरासी में आते नहीं. करो० ५

श्री आमेर तीर्थराज चन्द्रप्रभु स्तवन

(तर्ज—गोपीचंद लड़का)

भवि भावे भेटो चंदा प्रभु भगवान को ॥ टेर ॥

चन्द्र मनोहर लांछन शोभित, शारद चन्द्र समाना ।
प्रभु मुख निरख हरख भर भवदव,
दुस्सह ताप गमाना रे. भवि० १

वीतराग की शान्ति अनूपम. शान्त सरूप बनावे ।
रागद्वेष को दूर हटाकर, परमानन्द निपावे रे. भवि० २

आमेर शहर पुरातन तीरथ. तीरथपति जिन चन्दा ।
पजन वन्दन करते भागे, जनम जनम दुःख द्वन्दा रे. भवि०

सुखसागर भगवान सदा हरि, पूज्य जिनेश्वर स्वामी ।
सेवा से अनहद सुख मेवा, पावे शिवगति गामी रे भवि०५४

उन्नीसे सत्यासी पोषे, कृष्ण एकादशी भारी ।
सघ सहित निज सदूगुरु सगे,
जिनयात्रा जयकारी रे भवि० ५

छगनलालजी टाक चतुर्विध, सघ सुभक्ति सुधारे ।
जिनयात्रा नवनिधि नित विलसे,
कीर्ति "कवीन्द्र" उचारे रे भवि० ६

●

श्री तारंगा तीर्थ स्तवन

(तर्ज—कुण जाणे)

तारगा तीर्थ विहारी, प्रभु भेटे भाव सुधारी रे तारगा० ॥टेर॥

प्रभु अजित जिनेश्वर राया,
दर्शन कर चित्त लुभाया रे. तारगा०
श्री कुमारपाल भूपाला,
जिन चैत्य रचा सुविशाला र तारगा० १

गिरिशिखर समान सुराजे,
गिरिशिखरे शान्ति समाजे रे तारगा० ।
जितशत्रु विजयाराणी,
सुत अजित अजित गुणखाणी रे तारगा० २

दर्शन दे पुनित बनावे
अन्तर अरि दूर भगावे रे तारगा० ।
योगी भोगी जे ध्यावे,
वे परम महोदय पावे रे तारगा० ३

गिरिशान्त गुफा में फिरते,
दिलसे सव दुःख विसरते रे. तारंगा० ।
मोटी वर कोटिशिला पर,
गये शिवपुर कोटि मुनीश्वर रे. तारंगा० । ४

श्री सिद्धशिला सुखकारी,
फरसनतें दुविधा टारी रे तारंगा० ।
सुखसागर श्री भगवाना,
ध्यावें धरी दिल वहुमाना रे. तारंगा० ५

उन्नीसे छयासी वर्षे,
वदि चैत्र चतुरदशी हर्षे रे तारंगा० ।
हरिपूज्य परम गुरु संगे,
यात्रा करी भाव सुरंगे रे. तारंगा० ६

हेमेन्द्र सतीर्थ विहारे,
युग राम-अमर सहचारे रे तारंगा० ।
गुण "दिव्य कवीन्द्र" अगोचर,
पाये जिनदर्शन मन भर रे. तारंगा० ७

उद्‌बोधन पद

(तर्ज—उठ जाग मुसाफिर)

महावीर शरण महावीर बनो,
महावीर बनो महावीर बनो ॥टेर॥

दुःख भी सुखमय बन जायेगा, भय तन मन से मिट जायेगा ।
मृत्यु जीवन बन जायेगा,
जो महावीर बन जायेगा. महावीर० १

दुःख कारण कायरता जानो, भय कायरता है पहिचानो ।
मृत्यु कायरता ही मानो, दुःखमय मृत्यु से जय ठानो ॥
सुखमय निर्भय नित अमर वनो,
महावीर वनो महावीर वनो २

यह देह नहीं आतम अपना, आतम परमातम है अपना ।
यह देह दीखता है सपना, इसमे केवल तपना खपना ॥
प्रभु कोमल भाव विकासी वनो,
महावीर वनो महावीर वनो ३

मै मृत्यु नहीं मै मृत्युजय हूं, भयभीत नहीं मै निर्भय हू ।
दुःख है नहीं मै सुखसागर हू, मै अपना भाग्य विधायक हू ॥
यों उन्नतपद अधिकारी वनो,
महावीर वनो महावीर वनो

जडता जीवन से दूर रहो, चेतनमय पुण्य प्रवाह वहो ।
झंझावातों में अचल रहो, शिवपुर की पावन पंथ गहो ॥
यो "हरि कवीन्द्र" सगीत वनो
महावीर वनो महावीर वनो ५

महावीर जयन्ती गीत

(तर्ज—झडा उचा रहे हमारा)

आज जयन्ती वन्दे वीर, मन्त्र जपे वन्दे वीरम्,
तन से मन से वन्दे वीर वन्दे वीर वन्दे वीरम् ॥ टेर ॥

पूर्ण अहिंसा पालन कर्त्ता, जन जीवन से भव भय हर्ता ।
दुःख दावानल शान्ति सुनीर, वन्दे वीर वन्दे वीरम् ॥१॥

कायर जन हिंसा करते हैं, कर हिंसा हिंसक मरते हैं ।
आत्म अहिंसा धारक धीर, वन्दे वीर वन्दे वीरम्. ॥२॥

सुख दुखदाता ओर नहीं है, सुख दुखदाता कर्म सही है।
कर्म घनाघन शमन समीरं, वन्दे वीरं वन्दे वीरम् ॥ ३ ॥

स्त्री शुद्रों के भी जीवन में, हो विकास घरमें या वनमें।
भीम भवोदधि तारक तीरं, वन्दे वीरं वन्दे वीरम्. ॥ ४ ॥

सुखसागर भगवान हमारे, जिन हरि पूज्यातम अविकारे।
पी "कवीन्द्र" पावन गुण खीरं, वन्दे वीरं वन्दे वीरम्. ॥५॥

महावीरस्वामी महावीरस्वामी

(तर्ज-तुंही तुं तुंही तुं.)

हमें याद आते महावीरस्वामी, महावीरस्वामी महावीरस्वामी,
कहो जय कहो जय महावीरस्वामी,
महावीरस्वामी महावीरस्वामी ॥ टेर ॥

हमें आत्मवादी बनाया है किसने ?
अहिंसा सिखाई हमें ओर किसने ?
करम का भरम भी मिटाया है किसने ?
महावीरस्वामी महावीरस्वामी. हमें० १

हमें स्यादवादी बनाया है किसने ?
दिया ज्ञान का दान परधान किसने ?
बनाया हमें धीर गंभीर किसने ?
महावीरस्वामी महावीरस्वामी. हमें० २

महावीर से थे महावीरस्वामी,
अहिंसक यहाँ एक थे वीर स्वामी,
भवों के दुखों से हुए जो विरामी,
महावीरस्वामी महावीरस्वामी. हमें० ३

सुखों के समुदर महावीरस्वामी,
हैं भगवान जगमे महावीरस्वामी,
हरि पूज्य आतम सदा वीरस्वामी,
महावीरस्वामी महावीरस्वामी हमे० ४

"कवीन्दर" कलपना नही कर सकेंगे
जहाँ देवता के गुरु भी थकेंगे,
सुजन भक्ति के वश जिन्हें गा सकेंगे,
महावीरस्वामी महावीरस्वामी हमे० ॥ ५ ॥

■

प्रभु प्रार्थना रूप स्तवन

(तर्ज–बिना प्रभु पास के देखे)

प्रभुजी दरस दे देना, हृदय में हरस भर देना,
कृपा की कोर कर देना, विनतियाँ मेरी सुन लेना ॥टेर॥

करम का क्लेश है भारी, रहू बेचैन मै इससे।
दया कर दूर कर देना, विनतियाँ मेरी सुनलेना प्रभु० १

तु ही सुख सिन्धु है भगवन्, तुही हरि पूज्य परमातम।
"कवीन्दर" कीर्तियाँ गाता, विनतियाँ मेरी सुन लेना प्रभु० २

■

प्रभु की खोज

भगवन तू कहाँ छिपा है,
मै खोज खोज कर हारा भगवन तू कहाँ छिपा है ॥टेर॥

सूरज चदा तारों मे, मोती हीरा हारों में।
तेरा पाया नहीं है पारा-भगवन तू कहाँ छिपा है ॥ १ ॥

बागों में तुझको ढूढा, फूलों में तुझको खोजा
पाया नहीं खोज सहारा, भगवन तू कहाँ छिपा है ॥ २ ॥

मंदिर में मूरत तेरी, छाया हैं उसमें तेरी,
गुरुओं ने हमें बताया, भगवन तूं कहाँ छिपा है. ॥ ३ ॥
तू सुखसागर है भारी, भगवन तूं है जयकारी,
सुरगणनायक हरि पूजे, भगवन् तूं कहाँ छिपा है. ॥ ४ ॥
तेरी कीर्ति "कवीन्द्र" गावें, गुण रस भवि भंवरे पावें,
मैंने आज तुझे जाना है, भगवन तूं कहाँ छिपा है. ॥ ५ ॥

■

श्री वीतराग महिमा

(तर्ज—नमो रे नमो मंगलमय महावीर)

वीतराग भगवान नमो रे नमो वीतराग भगवान. ॥टेर॥
राग द्वेष को दूर निवारें, करत जगत कल्याण. नमो० १
राग द्वेष से भय बढ़ता,—होता जीव हैरान. नमो० ॥ २ ॥
रागद्वेप नाशक नित समरुं, समरण सुखद विधान. नमो० ॥३॥
वीतराग आतम परमातम, जिन हरि पूज्य प्रधान. नमो० ॥४॥
प्रभु पद कमल "कवीन्द्र" मन भंवरा,
करता गुण रस पान. नमो० ॥ ५ ॥

■

बिगड़ा जीवन

कोमलता है नहीं, नहीं कुछ सरस सुवासा,
भव्य भाव भी नहीं, नहीं सौन्दर्य विलासा ।
कमल नहीं है रहे निकेवल कण्ठक भारा,
जीवन ऐसे बना हुआ है, नरकागारा ॥ १ ॥
चौतरफा हे निकल रही ज्वालाएं भारी,
उमड़ रहा है धूम भयंकर अपरम्पारी ।
बढ़ती ही है जलन, शान्ति का नहीं प्रचारा,
जीवन ऐसे बना हुआ है...नरकागारा ॥ २ ॥

नहीं सुपथका नाम खारकी जड़ भर मारा,
रस की नदिया न है बसे बस मृगजलधारा।
नहीं पुण्य अकूर-सुफल-छाया विस्तारा,
जीवन ऐसे बना हुआ है नरकागारा॥ ३॥

अय कवीन्द्र

(१)

कुटिल कल्पना जाल बिछाकर क्यों फसता है,
रोने के सब साज सजाकर क्यों हसता है।
क्यों अपनासा मान जगत धोखा खाता है,
क्यों बहुविध रस रङ्ग नहीं तू लख पाता है॥

(२)

सर्व नाशके अङ्कुर ये क्यों फूट रहे हैं,
हृत्तन्त्री के तार बता क्यों टूट रहे हैं।
सुर सारे बेसुरे बने तेरे कुण्ठित क्यों,
तू उपेक्षकों के पदमें होता लुण्ठित क्यों॥

(३)

दो रङ्गी दुनियासे तू क्यों कह डरता है,
दिलको देकर दिलके टुकड़े क्यों करता है।
अय दिल बे दिल की बातों मे क्यों पड़ता है,
कविता की बेतुक उड़ान मे क्यों उड़ता है॥

अय कवीन्द्र !

(१)

जिन में त्याग न है वे क्या कुछ कर सकते हैं!।
जिन में न्याय न है वे क्या कुछ कर सकते हैं!॥
दोनों का उत्तर नकार मे होगा कैसे!।
बिना मूलके पेड़ नहीं हो सकता जैसे॥

(२)

बलवानों से निर्बल जन को लड़ते देखे,
और विजय यश भी तब उनको मिलते देखे ।
जब कि उनके दिव्य शक्तियां रही सहायक,
उन्नत होकर तभी बने वे त्रिभुवननायक ॥

(३)

त्याग न्याय अरु दिव्य शक्तियों का हो जैसे,
पूर्णतया सुविकाश सदा कर काम तू ऐसे ।
अय कवीन्द्र ! तव जीवन कविता को तूं गाना,
अपने ओरों के दिलको फिर तू बहलाना ॥

करणी विना कथनी क्या काम की

करण में दृढ़ता यदि है नहीं,
कथन में फिर कौन महत्त्व है ।
कथन के अनुरूप रहे क्रिया,
प्रकटता तब पावन तत्त्व है ॥ १ ॥

जगत में जितने जन धन्य औ,
परम मान्य पवित्र चरित्र है ।
सम रहे उनके कथन क्रिया,
न च कदापि विरोधि-विचित्र है ॥ २ ॥

कथन में बस है जन वीर जो,
अति कुलक्षण संख डफोल से ।
भुवन ताडित वे नित होत हैं,
प्रकट ढ़ोल यथा निज पोल से ॥ ३ ॥

कथन से अति दुष्कर है क्रिया,
पर वही सब को बस मान्य है।
कथनवत् करते इस हेतु से,
सतत सक्रिय साधु वदान्य है ॥ ४ ॥

कथन की तब लों महिमा रहे,
न जब लों जन लक्षित हो क्रिया।
कथन का कुछ मूल्य न है तभी,
जब कि हो जन लक्षित विक्रिया ॥ ५ ॥

बहुत सा कहना यदि छोड़के,
कुछ हितावह काम किया करे।
निज समुन्नति को करते हुए,
जग समुन्नति साधन विस्तरे ॥ ६ ॥

कथन से पहले करले सदा,
सदय बुद्धि सुधा सम सत्क्रिया।
जिमि "सुदिव्य कवीन्द्र" करें स्वय,
अमर कीर्तिको कथा भुवन प्रिया ॥ ७ ॥

माया मोह फन्द को ही, राग द्वेष द्वंद का ही।
उपरि आनन्द को ही, भेद नहीं पाऊं मैं ॥

कपट की केलि को ही, प्रेम की पहेलि को ही।
जीवन सहेली को ही, समझ न जाऊं मैं ॥

तो लों "सुकवीन्द्र" वृन्द, सोचो कर आँख बन्द।
पीछे करो भूरि छंद, बात को बताऊं मैं ॥

भव महाभीमरण, चित्त कोन मिटयो व्रण।
केसे कियो कैसे प्रण, प्राण से निभाऊँ मैं ॥

स्वदेश गौरव

समस्त तीर्थ में स्वदेश तीर्थ तीर्थराज है.
सुदुःखसिन्धु पार हेतु को स्वदेश पाज है।
अनन्य भाव से स्वदेश तीर्थ में फिरा करो,
स्वदेश के लिये जिओ स्वदेश के लिये मरो. ॥ १ ॥

स्वदेश में रहे हुए सभी निजात्म रूप है,
स्वदेश राम-राज्य नीति से भरा अनूप है।
स्वदेश के सुवेश को सदैव अंग पे धरो,
स्वदेश के लिये जिओ स्वदेश के लिये मरो. ॥ २ ॥

स्वदेश का विधान जीवनोन्नति प्रवाह है,
स्वदेश ही नितांत शांति-पूर्ण एक राह है।
न लाठि-कैद-तोप-फांसि या न अन्य से डरो,
स्वदेश के लिये जिओ स्वदेशके लिये मरो. ॥ ३ ॥

विदेश जीवितव्य से स्वदेश मृत्यु है भला,
विदेशभाव लेश भी स्वदेश की बुरी बला।
स्वदेश भावना हमेंश कूट कूट के भरो,
स्वदेश के लिये जिओ स्वदेश के लिये मरो ॥ ४ ॥

स्वदेश ही सुदिव्य देवलोक से विशेष है,
सदा सुदुर्गति प्रधान रूप से विदेश है।
स्वदेश पुण्य भूमि को सदैव वंदना करो,
स्वदेश के लिये जिओ स्वदेश के लिये मरो. ॥ ५ ॥

स्वदेश साधना अनन्त आत्म सौख्यकारिणी,
स्वतंत्रता प्रचारिणी अशेष पाप हारिणी।
स्व साध्य सिद्धि हेतु को स्वदेश साधना करो,
स्वदेश के लिये जिओ स्वदेश के लिये मरो. ॥ ६ ॥

विदेश के विलास सर्वनाश वासना भरें
विकाश के विरोध हेतु दासता दिया करें ।
विदेशभाव छोडके स्वदेश भाव को धरो,
स्वदेश के लिये जिओ स्वदेश के लिये मरो ॥ ७ ॥

स्वदेश ही सुरम्य है प्रकाश धाम शाश्वता,
कवीन्द्र खूब हजार है, स्वदेश की महत्त्वता ।
स्वदेश की सुमञ्जु गोद में रमा रहा करो,
स्वदेश के लिये जिओ स्वदेश के लिये मरो ॥ ८ ॥

●

उपदेशक पद

(तर्ज-गजल)

क्या किसी के एक से दिन विश्व में देखे गये ?
क्या कभी बनते बिगड़ते नर नहीं देखे गये ? ॥टेर॥

जो कभी धनवान थे अभिमान से अकड़ तने,
वे दरिद्री दासता करते न क्या देखे गये ? ॥ १ ॥

जो कभी बलवान् बन अपमान करते और का,
क्या न अपमानित हुए आखिर वही देखे गये ? ॥ २ ॥

रावण व दुर्योधन गये जिनका बड़ा आतंक था,
इतिहास पढ़लो अन्त में वे किस कदर देखे गये ? ॥ ३ ॥

करते रहे उपकार जो ससार का निज त्याग से,
"हरि कवीन्द्रो" से सुवदि आज भी देखे गये ? ॥ ४ ॥

कविकुलकिरीट श्री जिनकवीन्द्रसागरसूरीश्वरजी महाराज रचित

बुधिया बत्तीसी

(सोरठा)

ॐ अर्हं गुरुदेव बुधिया मत विसरे कदी ।
करसी सुरनर सेव भवसागर तिरजावसी ॥ १

जिन हरिसागर सूर गुण गिरुआ गुरुराजसु ।
बुधिया भाव सनूर कर सतसंग सुहामणो ॥ २

जिन आणा दिलधार दया धरम सुं दोसती ।
सफल होय संसार बुधिया दुख रेसी नहीं ॥ ३

ज्ञानी गुणी विनीत कलपविरछ सा मानवी ।
बुधिया परम पुनीत वे फल देसी फूटरा ॥ ४

अज्ञानी अविनीत बुधिया वनमें ढूंढसा ।
तन मन वच विपरीत जगमें हे अलखामणा ॥ ५

बुधिया थूं वड़भाग पेली सुं ही चेतजा ।
घरमें लागी आग कुओ खोद्यां कांई हुवे ॥ ६

जोवन तन धनमाल परले होसी एक दिन ।
पाणी पेलां पाल बुधिया थूं तो बांधले ॥ ७

धरम करमसुं हीण हीणाइज करतब करे ।
बुधिया वे मतहीण विण सिंगोरा मानवी ॥ ८

बुधिया होसी घात कर मत संग कुमाणसां ।
विगड्यां पाछे बात स्याण व शोभन पावसी ॥ ९

पेली दे विसवास पाछे जो पलटे परा ।
वे नर करसी वास निहचे बुधिया नरक में ॥ १०

बुधिया देऊ सीख घात म कर विसवास से ।
भलो मागेलो भीख विसवासी री हाथसु ॥ ११

भाग पलटतां पाण जग सारो पलटे परो ।
बुधिया होवे हाण धन इज्जतरी सामटी ॥ १२

पलट्यो थारो भाग बुधिया सत मत छोड़जे ।
सतरी होसी लग्ग धन जस पाछा पावसी ॥ १३

तगदीरों रा खेल बुधिया झूठ न होवसी ।
तिलों मायसु तेल काढण वाला काढसी ॥ १४

कृत करमोरी रेख साह्व कारण लेख ज्यु ।
निजजीवन में देख बुधिया साची होवसी ॥ १५

नरपतियों ने सेव के बुधिया परदेश जा ।
के आराधे देव भाग जितो ही पावसी ॥ १६

करम रेख ने देख प्राक्रम थू छोडे मती ।
यामें मीन न मेख बुधिया वस होंसी फते ॥ १७

बुधिया फाटे गाभ तो कारी लागे परी ।
पिण फाटे जद आभ कारी किसविध लागसी ॥ १८

खावे उधे घोर भारे मारे भोम ने ।
उणमिनखा सु ढोर बुधिया तू जाणे भला ॥ १९

घरसु कर अनमेल ओरों सु मिलता रहे ।
उण मिनखों री गेल बुधिया कर देन चालणो ॥ २०

कृतघन लाख हजार जीवन में मिलसी परा ।
पिण बुधिया उपकार मानण वाला एक दो ॥ २१

तके पराई नार तन धन जस से नास कर ।
कलजुग कालीधार बुधिया वे नर डूबसी ॥ २२

बुधिया ज्ञानी सीख परनारी मत ताक तूं ।
नहीं मांगेलो भीख बदनामी होसी बड़ी ॥ २३

जगमें जो अज्ञान तके लुगाई पारकी ।
हो जासी हेरान बुधिया जन धिक्कारसी ॥ २४

कूप पडशी भांग कुण कुण ने समझावसी ।
विचे अडा मत टांग बुधिया होणी होणदे ॥ २५

वडे ढोल में पोल होवे जद वाजे घणो ।
बुधिया त्यूं ही तोल वडे घरों री रीत ने ॥ २६

सहु वणावे वात अपणी अपणी वारमें ।
बुधिया रुत वरसात ज्युं टररावे भीडका ॥ २७

जगमें कुत्ता काग उण मिनखों सुं तो भला ।
जनम भोम अनुराग जो बुधिया राखे नहीं ॥ २८

जनम भोम री जोड़ बुधिया कोई न कर सके ।
सुरगां भारी खोड उठे न कोई आपणो ॥ २९

जननी रो उपकार पेट उठायो पालियो ।
बदलो देवण वार बुधिया हे क्युं आलसी ॥ ३०

जननी सुं मुखमोड़ अलगा दुनिया दोयसु ।
पत्थर ही सुं होड बुधिया वे तो कररया ॥ ३१

देशकाल अनुसार करणा करतव आपणा ।
ओई धरम अधिकार बुधिया थूं हुसियार हो ॥ ३२

शालिभद्र सज्झाय

ढाल १ ली

(तर्ज–गजल)

हृदय में दानकी महिमा, न मुखसे गाइ जाती है।
बनी जो बात है जगमे, वही तो याद आती है ॥ टेर ॥

परव दिनमे पड़ोसी घर, बनीथी खीर खाने को ।
कहे लख ग्वाल बालक मा, मुझे दो खीर भाती है हृ० ॥१॥

बिना साधन बने कैसे बतादे खीर है बेटा,
सभी लाचार माताये, अरे दु:ख दिन बिताती है हृ० ॥२॥

अबुध वह ग्वाल बालक रो, पड़ा वह रो पडी माता,
अरे किस्मत करामाते, अजब लीला दिखाती है हृ० ॥३॥

पडोसिन आ गई बोली, बता क्यों रो रही है री,
कहे मा हाय! बेटे को न है पर खीर भाती है हृ० ॥४॥

अरे! यह लाल है भूखा, न खाता आज रोटी है,
बताऊ बहिन दु:ख क्या मैं, फटी अब जाती छाती है हृ० ॥५॥

पडोसिन झटसे ले आई, सभी तो खीरके साधन,
बनी मा खुश हुई फिरसे, पडोसिन घर में जाती है हृ० ॥६॥

पधारे मास तपधारी, मुनीश्वर ग्वाल बालक ने,
सुपात्रे खीर वहरा दी, भुवन भर कीर्ति जाती है हृ० ॥७॥

हुआ वह शालिभद्र जिसे, नृपति भी देखने जाता,
दान की दिव्य गाथायें, 'कवीन्द्रो' को सुहाती है हृ० ॥८॥

ढाल २ री

(तर्ज—माला काटे रे जाला जीवका)

दानी सुख पाते ज्ञानी गुण गाते बडे भाव से।
दानी दुनिया में ऊंचे चढ़ जाते सहज सुभाव से ॥टेर॥

चित्त वित्त और पत्त पुनीता, ग्वाल बाल वह पाया;
राजगृही गोभद्र शेठ घर, भद्रा जननी जाया रे. दानी० ॥१॥

शालिभद्र शुभ नाम सलोना, शुभ लक्षण गुणधारी;
यौवन वय बत्तीस सुकन्या, परणे जग जयकारी रे.दानी० ॥२॥

लाख लाखके कंबल सोला सौदागर ले आये;
श्रेणिक महाराजा चतुराइ. लेनेसे नट जाये रे. दानी० ॥३॥

राजा नट जाते सौदागर. मन ही मन अकुलाये;
भद्रा घर सब बेच चुके तब, तन मन धन हरखाये रे. दानी०॥४॥

पटराणी हठ नृप फिर मांगे, बोले तब व्यापारी;
बेच दिये नहीं ग्राहक इच्छा, पूर सके लाचारी रे. दानी० ॥५॥

शालिभद्र महाकीर्ति सुन, राजा उन्हें बुलायें;
सेठानी सविनय राजाको, अपने घर पधरावे रे. दानी० ॥६॥

ऋद्धि सिद्धिको देख देख नृप, अचरजमें भर जावें;
रंग महलमें माँ शालिको, आकर सहज सुनावे रे. दानी० ॥७॥

लाल लाडले भाग योगसे, राजा श्रेणिक आयें;
कहाँ पधरावे आओ उनका, स्वागत हम कर पावे रे. दानी० ॥८॥

शालि बोला मां भखार में. श्रेणिकको भर देना;
'हरिकवीन्द्र' ये पुण्य ठाठ है पुण्य पाठ चित्त देना. दानी० ॥९॥

ढाल ३ री

पुण्य ठाठ वातो नहीं होता, करणी के फल जानो,
करणी करते निज जीवन में, सावधानता ठानो ॥टेर॥

श्रेणिक राजा आया है तो, मा, भखार मे डालो,
शालिभद्र कहता क्या पूछो, करना हो कर डालो पुण्य० ॥१॥

मा हस कहती लाल लाडले, मालिक है वह राजा,
उठो चलो करो दर्शन, घर आया सकल समाजा पुण्य० ॥२॥

माथा ठनका शालिभद्रका. मेरा भी है स्वामी,
अरे पुण्यमें ही है मेरे, कोई भारी खामी पुण्य० ॥ ३ ॥

पुण्य त्यागसे ही होता है, त्यागी हो जाऊंगा,
एक एक नारीको तजकर, साधु हो जाऊंगा पुण्य० ॥ ४ ॥

'हरिकवीन्द्र' त्यागी जीवन धन, पावन आतम योगी,
शालिभद्र सुखमय हो जाते, निर्भय निजपद भोगी. पुण्य० ॥५॥

●

ढाळ ४ थी

(तर्ज—रसिया)

भोग में जीते मरते हैं,
भोग रोग का मूल, भूल जन उसमें करते है ॥टेर॥

यहाँ त्याग पथ विकट त्यागीका आदर होता है।
मरकर भी भगवान् त्यागी नर आखिर होता है. भोग० ॥१॥

है तो ऐसी वात मोह पर, होता दुखदायी,
कायरका नहीं काम वीरनर त्यागी होजाई भोग० ॥ २ ॥

एक एक भावज को तजकर, शालिभद्र भाई;
त्यागी होंगे सुना वहिनने, मनमें अकुलाई. भोग० ॥ ३ ॥

पति स्नान के समय सुभद्रा, अकुलाई रोवे;
पति पूछे धन शेठ कहो प्रिय ! क्या मन दुःख होवे. भोग० ॥४॥

क्या मेरे से या परिजन से, अनुचर से कोई;
हुआ कहो अपमान रंज प्रिय ! बोलो क्यों रोई. भोग० ॥५॥

ना ना नाथ ! न है कुछ ऐसा, भैयाजी मेरे;
एक एक भावज तज साधु हो यह दुःख मेरे. भोग० ॥६॥

क्यों रोती हो त्याग सत्य शिव सुन्दर होता है;
वीर तजे इक साथ भाई क्यों कायर होता है. भोग० ॥७॥

कथनी है आसान कठिन, करनी बस होती है;
कथनी करनी एक रूप जीवन में ज्योति है. भोग० ॥८॥

धन धन्ना तज चला एकदम, आठों सेठानी;
'हरि कवीन्द्र' मन सुमन खिले,
जन जीवन गुण खाणी. भोग० ॥ ९ ॥

ढाल ५ मी

मोह महा बलवान रुलावे जीवको,
मोह भूलावे उत्तम आतम भान जो;
होता है बेभान दुःखी संसार में,
करुण कथा का कारण मोह महान जो. मोह० ॥ १ ॥

इधर नदी और बाघ उधर हा ! हा ! हुआ,
रोती-रोती कहे सुभद्रा नाथ जो;
भाई के त्यागी होने का दुःख था,
त्यागी होते आप अरे ! इक साथ जो. मोह० ॥ २

मानो मानो मत जाओ मालिक सुनो,
माफ करो मैं बोली भोले भाव जो,
आप विवेकी ज्ञानी पुरुष प्रधान हो,
कीडी कटक समान करो न अभाव जो मोह० ॥ ३ ॥

नार मरे गई घर सपत्ति भी न रहे,
होते साधु तो नही कोई बात जो,
समरथ को साधु न होना चाहिये,
भीख मागकर जीना जीवन घात जो मोह० ॥ ४ ॥

जोड़ा जवानी भोग भोग ससार में,
जोग धरेंगे अरे अपन मय साथ जो,
आओ मत जाओ रुक जाओ नाथजी !
पैर पडू मै प्यारे, जोडू हाथ जो मोह० ॥ ५ ॥

धन्ना सेठ कहे सुन वल का क्या पता,
समरथ को ही साधु होना भाग जो,
भीख भिखारी-सी साधु लेते नहीं,
सीख सु देते अभी उत्तम लाग जो मोह ॥ ६ ॥

भेख वसे भगवान् करो अपमान ना,
सत्य और शिव सुन्दर मारग पह जो,
तन मन धन धन साधु पद सेवा करे,
जीवन सुमनस्, विकसित पावन देह जो मोह० ॥ ७ ॥

मोह मिटे प्रकटे जन जीवन ज्योतियाँ,
साधु होते सुखसागर भगवान् जो,
'हरि कवीन्द्र' धन धन्य सुभद्रा कर गये,
आतम साधन मगल मूल विधान जो मोह० ॥ ८ ॥

ढाल ६ ट्ठी

(तर्ज-जाओ जाओ)

उठो छोड़ो कायरता कंवरों, शालिभद्र बड़ भाग;
मौका पाया मत चुक कंवरों, उत्तम आतम लाग. ॥टेर॥

महावीर भगवान् हमारे, तारक तीरथनाथ;
चरण शरण में करें साधना,
चलो अपन सब साथ. उठो० ॥ १ ॥

एक एक को क्या छोड़ो तुम, मोह महा बलवान;
कहीं अरे वह छलकर लेगा,
हो जाओ सावधान. उठो० ॥ २ ॥

शालिभद्र उठ चला तभी, सुन बहनोई की बात;
ऐसे प्रेरक स्वजन मिलें तब,
मानो पुण्य प्रभात. उठो० ॥ ३ ॥

धन धन्ना ने शालिभद्रने, ऋद्धि सिद्धि भंडार;
त्यागी हो वैरागी जगमें,
माना अफल असार. उठो० ॥ ४ ॥

भोग रोगका मूल जान जन, जो तजते संसार;
अजर अमर होजाते आखिर,
शिवरमणी भरतार. उठो० ॥ ५ ॥

शालिभद्र धन धन्ना दोनों, हो जावें अनगार;
प्रभु आदेशे गिरिवैभारे,
जोडे आतम तार. उठो० ॥ ६ ॥

आतम योगी जीना मरना, दोनों मंगल रूप;
'हरि कवीन्द्र' मन सुमनस् विकसे,
नमो नमो गुण भूप. उठो० ॥ ७ ॥

ढाल ६ मी
(तर्ज—आशावरी)

ऐसे धन धन्ना धनशाली,
जिनने जीवन ज्योती जगाली ॥ टेर ॥

वीतराग श्री वीरप्रभुके, चरण शरण अधिकारी,
हुए महाव्रतधारी भारी,
निज पर हित सुखकारी ऐसे० ॥ १ ॥

मा हाथो तप पारणा होगा, वीरप्रभु की वाणी,
भद्रा घर पहुचे श्री शाली
मा न मिली गुणखाणी ऐसे० ॥ २ ॥

राह मिली वुढ़िया शालीको, भावे खीर वहरावे,
शंकित शाली पूछे प्रभुजी,
गत-भव भान करावे ऐसे० ॥ ३ ॥

ज्ञानी आतम-ध्यानी साधु, धन धन्ना धनशाली,
गिरि वैभारे अनशन लेते,
शिव सुखपदवी पाली ऐसे० ॥ ४ ॥

सुखसागर भगवान् दान से सुमनस् खिल जावे,
दान करो मत मान करो नर,
'हरि कवीन्द्र' गुण गावे ऐसे० ॥ ५ ॥

●

सुलसा महासती सज्झाय
(दोहा)

राजगृही जाऊ प्रभो, फरमाओ कोई काम,
धर्मलाभ सुलसा कहो, सदा सुदर्शन धाम ॥ १ ॥

(तर्ज—रसिया)

जगत में श्रद्धा जीवन है,
श्रद्धा जीवन धरें जगतमें, वे जन धन धन है जगत० ॥टेर॥

भक्त चित्त में रहे प्रभु, वह भक्त सदा धन है;
प्रभु चित्त में रहे भक्त वह,
धन्योत्तम धन है. जगत० ॥ १ ॥

सुलसा महासती श्राविका, श्रद्धा में सेंठी;
अम्बड़ उसकी करे परीक्षा,
रही नही हेठी. जगत० ॥ २ ॥

चार दिशा में चार रूप, अम्बड़ आडम्बर में;
गई नहीं वह रही सदा,
श्रद्धा के संवर में. जगत० ॥ ३ ॥

अम्बड़ नतमस्तक हो कहता, धर्मभगिनी धन तू;
धर्मलाभ दे महावीर प्रभु,
है भव्यातम तूं जगत० ॥ ४ ॥

नही सांच को आंच हंमेशा, सांच सांच होता;
रतन कांच के पास रहे पर,
नही कांच होता. जगत० ॥ ५ ॥

सुवरन साधु एकरूप हैं, करो परीक्षा कोय;
सुवरन सुवरन होता सुवरन,
पीतल कभी न होय. जगत० ॥ ६ ॥

प्रभु वीरने याद किया, वह धन सुलसा नारी;
'हरि कवीन्द्र' जन जीवन उपवन,
सुमनस बलिहारी. जगत० ॥ ७ ॥

वीरनिर्वाण सज्झाय

मोह महा दुःखदायी होता है यहाँ,
मोह जीत जन होते हैं भगवान् जो,
मोह सुदर्शन के चारित्र को रोकता,
सब कर्मों में मोह महा बलवान् जो ॥ १ ॥

वीर प्रभु निर्वाण निकट गौतम गये,
दूर देवशर्मा प्रतिबोधन हेतु जो,
विरह जनित दुःख मूर्छा तन मन छा गई,
वीतराग पद पावनतम संकेत जो ॥ २ ॥

मूर्छा मिटते बालक सम रोने लगे,
गणधर गौतम स्वामी करे विलाप जो,
हा ! हा ! ज्ञानी परमगुरु यह क्या किया,
भरा भयकर मन मेरे सन्ताप जो ॥ ३ ॥

ऐसे मौकों मे है मेरे बापजी,
दूर गयों को पास बुलावें लोक जो,
किया निकट को दूर प्रभुजी आपने
क्या बतलाऊं कितना मेरा शोक जो ॥ ४ ॥

जाना होगा हठकर बैठेगा कहीं,
मागेगा यह गौतम केवलज्ञान जो,
दे देते तो खोट खजाने में न थी,
था प्रभु केवलज्ञान अनन्त अपार जो ॥ ५ ॥

अथवा जाना होगा हठ से साथ में,
चलने की ठानेगा गौतम बाल जो,
ले चलते तो नाथ ! न सकड़ाई यहाँ,
होती, होता मैं न यहाँ बेहाल जो ॥ ६ ॥

गौतम गौतम प्यार भरे इस नाम से.
कौन बुलावेगा मुझको हे नाथ जो;
अन्धकार छाया कुछ सूझ न पड़ रही,
दीख रहा नही हन्त ! हाथको हाथ जो ॥ ७ ॥

संशय मेरे अब मैं पूछूंगा किसे,
उत्तर देगा कौन मुझे भगवान् जो;
हा ! हा ! मैं तो आज सर्वथा लुट गया,
जीवन धन तुम विन मैं हूँ वेभान जो ॥ ८ ॥

क्षय उपशम भावों में तरतमता हुई,
प्रकटा नितका सतसंगी सुविधान जो;
'हरि कवीन्द्र' धनवीर प्रभु निर्वाण दिन,
क्षायिक भावे गौतम केवलज्ञान जो. ॥ ९ ॥

आत्मवोध सज्झाय

(तर्ज—केसरिया)

निज को मै भूला फिर भी फिरता हूँ फूला मान में ॥टेर॥
छह द्रव्यों में चेतन केवल, आतम द्रव्य अमोला;
मैं मुझको भूला हूँ जैसे,
गांवडिया जन भोला रे. निज० ॥ १ ॥

एक गाँव से चले कमाने, पांच जने सरवंगी;
घरवालोंने कहा पाँच हो,
ख्याल रखो सव संगी रे. निज० ॥ २ ॥

चलते उतरे नदी परस्पर, गिनें चार जन होते;
मन में दुःख धरते भाई रे,
कहकर वे रोते रे. निज० ॥ ३ ॥

सज्जन सहृदय पूछे कोई, क्यों रोते हो भाई,
बोले भोले पाँच हाय ! हम
चार रहे दुःखदायी रे निज० ॥ ४ ॥

एक एक थप्पड़ दे उनको, पूरे पाँच गिनाये,
धन होगी थप्पड़ वह गुरु की,
आतम बोध बढ़ाये रे निज० ॥ ५ ॥

धर्म अधर्म आकाश अरूपी, जड़ चल जग छ्ठन सा,
पुद्गल द्रव्य सम्बन्ध छूटेगा,
वपुसा वचसा मनसा रे. निज० ॥ ६ ॥

सुखसागर भगवान् परमपद, सुमनस् विकसित निज होता,
'हरि कवीन्द्र' आतम परमातम,
मिटे चार गति गोता रे निज० ॥ ७ ॥

उपदेशक सज्झाय

मान मानव रे, ध्यान तु धरे रे, नहीं रहना,
कड़वी बात कभी मत करना ॥ टेर ॥

बात करनी जो आती नहीं है, बात करने में सार नहीं है,
सुविवेक धरो, सुखसे विचरो, मौन गहना कडवी० ॥१॥

बात मन्त्र समान कही है, करामात भी और नहीं है,
बात लात बने, सुख मात बने, दुःख दहना कडवी० ॥२॥

घर घर में है बातों का झगड़ा, धर्मों में है बातों का रगडा,
कोई तत्व नहीं सार सत्त्व यही, सच कहना कडवी० ॥३॥

बात अमृत रूप बना दो, बात जहर का जोर मिटा दो,
अमरत्व वरो, दुःख दूर करो, बात सहना कडवी० ॥४॥

बात जीवन कुसुम खिलेगा. बात बात में मोक्ष मिलेगा;
'सुकवीन्द्र' कही, कोई झूठ नही, सच गहना. कडवी० ॥५॥

उपदेशक सज्झाय

एक भूपाल है, एक कंगाल है;
क्या बताये अपनी करणी के सब फल पावे ॥टेर॥

एक फूलों की शय्यापे सोता, एक टाट बिछाकर रोता;
एक मोज करें, एक आह भरें, क्या बतायें. अपनी० ॥१॥

एक खाता मिठाई बंगाली, एक खाता है दर दरपे गाली;
जैसा कर्म करें, वैसा जीव भरे- क्या बतायें अपनी० ॥२॥

एक राजा की रानी बनी है. एक बन मेतरानी खडी है;
झाडू देती फिरे. गलियाँ साफ करे, क्या बतायें. अपनी० ॥३॥

एक मोटर की करता सवारी, एक दरपे फिरता भिखारी;
टुकडा दे दो कहे, नयनो नीर बहे, क्या बतायें. अपनी० ॥४॥

एक सेठानी बनकर बोले, एक मगती घर घरपे डोले;
जैसी करणी करे वैसी भरणी भरें, क्या बतायें. अपनी० ॥५॥

'हरि-कवीन्द्र' तुम्हें समझावें, धर्म किया सदा सुख पावे;
जैसी करणी करे, वैसी भरणी भरें, यह चेतावें. अपनी० ॥६॥

बीड़ी त्याग सज़्झाय

(तर्ज-माला काटे रे)

मत पीयो बीड़ी, बीड़ी पीने में भारी पाप है. ॥टेर॥

धूम्रपान से जले कलेजा, कपडे भी जल जायें;
बीडी की अविवेक आग से, सर्वनाश हो जाये रे, मत० ॥१॥

कास श्वास केन्सर की पीडा बीडी बडी बीमारी,
डाक्टर वैज्ञानिक बतलावे जहरनी कोटि व भारी रे मत० ॥२॥

बीडी पीते खोटा खरचा, सो पचास का होता,
बीडी व्यसन सदा दु खदायी, बिगडे बेटा पोता रे मत० ॥३॥

बीडी बदबू घरवालों के, मनमे नफरत होती,
नफरतकी ही असर अरे-निज सन्तानो में होती रे मत० ॥४॥

रहे रात दिन बीडी की लत, नहीं नियम व्रत होता,
मिला अमोला मानव-जीवन, व्यर्थ बिना व्रत खोता रे मत० ॥५॥

बीडी या सिगरेट तमाखूका, जो व्यसन लगाया,
व्यसन दु ख जीवन में जानो, अपने आप बढाया रे मत० ॥६॥

करो तमाखू त्याग त्याग में, सुखसागर की सीमा,
'हरि कवीन्द्र' त्यागी वडभागी, जीवन ज्योति बीमा रे मत० ॥६॥

आत्म घर सज्झाय

(तर्ज–छोड बाबुल का घर)

आओ आतम घर, भटको मत परघर, खूब मौज मिले। ॥टेर॥

जहाँ ज्योति भरी, सुख सिद्धि भरी
जहाँ काल छली बल नाही चले आओ० ॥ १ ॥

जहाँ जन्म नहीं, और मरण नहीं,
पूरणचन्द्र की नित्य कलाये खिले आओ० ॥ २ ॥

जाते ओरों के घर, दु खं डगर डगर,
पथ में रजतम पर्वत खूब मिले आओ० ॥ ३ ॥

'हरि कवीन्द्र' कहे, आतम घर में रहे,
परमातम पद उन्हें सहज मिले आओ० ॥ ४ ॥

मरुदेवी माताकी सज्झाय

(तर्ज—कांटो लागो रे)

माता मरुदेवी यों बोले, भरत तूं सुण ले म्हारी बात;
राज पाट सुख भोगे तूं तो,
दुःखियो थारो तात. भरत० ॥ १ ॥

राज ऋषभरो खोस लियो थे, वो तो हो गयो साध;
खोज खबर नहीं काढे उणरी,
बन गई बडी उपाध. भरत० ॥ २ ॥

होसी भूखो प्यासो अथवा, होसी तिरपत हाल;
रोगी अरे निरोगी किणविध,
होसी म्हारो लाल भरत० ॥ ३ ॥

कद सोवे कद जागे उणरो, क्या है हाल बेहाल;
कठे वसे वो ऋषभ लाडलो,
क्यों नहीं करे संभाल. भरत० ॥ ४ ॥

ठंडी गरमी सहतो होसी, सहतो मानापमान;
थूं तो महेलों में सुख भोगें,
रखे न उणरो ध्यान भरत० ॥ ५ ॥

मीठी बातों बोले थूं तो, करे नहीं पर काम;
समाचार तू लाव ऋषभरा,
भली करेला राम भरत० ॥ ६ ॥

क्यूं थे सोच करो हे दादी, सुण लो म्हारी बात;
सुख संजम यात्रा में विचरे,
परम पूज्य मुज तात. दादी० ॥ ७ ॥

दरसण परसण आज करोंगा, चढ चालो गजराज,
देखो सुन लो समवसरण में,
बैठा श्री जिनराज दादी० ॥ ८ ॥

हरख हृदय में भर भर आवें, आसुडोंनी धार,
आतम री आख्या खुलगी,
अरु भर गयो भाव अपार दादी० ॥९ ॥

कोइ नही किणी रो जगमें, झूठो भव सन्ताप,
वीतराग भावों में बढ़गी,
मा मरुदेवी आप. दादी० ॥ १० ॥

करम काट केवली हो माता, सिद्धरूप हो जाय,
जिन हरिपूज्य परम आतम पद,
गुण कवीन्द्र नित गाय दादी० ॥ ११ ॥

भरत चक्री की सज्झाय

(तर्ज-हा सगीर्जाने पेडा भावे)

हाँ भरत की जाउ बलिहारी,
भोगी योगी बने भावना जग जयकारी रे ॥टेर॥

प्रथम प्रभु के पूत भरतजी, भारत के ये चक्रवरतजी,
छह खण्ड स्वामी आप,
आतमा में अविकारी रे हा भरत० ॥ १ ॥

आठ सिद्धि नवनिधि घर जाके, दिव्य रत्न चौदह ये जाके;
भरे हाजरी देव निरन्तर,
अति बलधारी रे. हा भरत० ॥ २ ॥

बन्धु विरोधी बोधि पावें, आदीश्वर शासन मन लावें,
बाहुबल से करे युद्ध,
सुध समकितधारी रे हां भरत० ॥ ३ ॥

वहुतर सहस नगर वर स्वामी, वत्तीस सहस राय पय नामी;
चउसठ सहस अंत पुर रानी.
सुन्दर सारी रे. हां भरत० ॥ ४ ॥

चोरासी लख हय गय सेना महाभोग जिनके क्या कहना;
महाऋद्धिके स्वामी थे जल,
कमलानुसारी रे हां भरत० ॥ ५ ॥

वैठे थे आदर्श भवन में, अनित्य भावना आई मनमें;
सुखसागर भगवान हुए,
केवल गुण धारी रे. हां भरत० ॥ ६ ॥

सुरगणनायक हरि तव आवें साधुवेश दे सीस नमावें;
करे 'कवीन्द्र' कीर्ति कथा,
आतम उपकारी रे हां भरत० ॥ ७ ॥

रहेनमि-राजुल-सज्झाय

(तर्ज-माला काटे रे. जाला जीवका)

गिरनार गुफा में, साधु रहेनमि धरता ध्यान रे;
चूके संयम सुं राजीमती देवे उनको ज्ञान रे. ॥टेर॥

नेमि प्रभु वन्दन कर आती, राजीमती गुण लीनी;
अंतर संयम रस भीनी थी.
वाहिर वर्षा भीनी रे. गिरनार० ॥ १ ॥

गीले वस्त्र सुकावन हेतु, सती गुफामें जाती;
रहनेमी हो गया विकारी,
वोलें सुन मन भाती रे. गिरनार० ॥ २ ॥

आओ भोगें भोग वुढ़ापे-में फिर साधु होंगे;
क्यों दुःख पाती हो हे भाभी!
हम तुम साथी होगे रे. गिरनार० ॥ ३ ॥

चौकी राजीमती यों बोले, सुन देवरिया मेरा,
नेमि वमन करी है उस पर,
क्यों मन मचला तेरा रे गिर० ॥ ४ ॥

सुन्दरता में आग भरी तुम इस मे जल जाओगे,
सत्य और शिव को पाओ,
तब ही सुख पाओगे रे गिर० ॥ ५ ॥

चाम मढी यह सुन्दर दीखे, मल मूत्रमय काया;
सयम पथ मे दृढ बन जाओ,
छोड़ो ममता माया रे गिर० ॥ ६ ॥

अगधन कुल साप भी वापस अपना विष नहीं लेता,
तुम उत्तम कुलमे जन्मे क्यों
उलटी मे मन देता रे गिरनार० ॥ ७ ॥

हाथी अकुश से वश आता, सती वचन वह आता,
सुध सयमी आतम सुख पाता
'हरि कवीन्द्र' गुण गाता रे गिरनार० ॥ ८ ॥

एकादशी सज्झाय
(तज बलिहारा बलिहारी)

अधिकारी हितकारी जयकारी,
नित मौन है नरनारी ! सुखकारी गुण को धरनारी ॥ टेर ॥
जीवन योधन, वचन विशोधन,
पावन गुण अधिकारी नित० ॥ १ ॥

मन वच काया योग, कर्म बन्ध भोग,
मौन करम क्षयकारी, नित० ॥ २ ॥

मुनि गुण मौन महोदय धारे जन होवे निर्भय,
जाउ मैं नित बलिहारी नित० ॥ ३ ॥

वाद विवाद नाशे, समता पद सुखद विकाशे;
मन वच लब्धि उदारी. नित० ॥ ४ ॥

मौन एकादशी आई, मौन की महिमा गाई;
आराधें शुद्ध बुद्ध धारी. नित० ॥ ५ ॥

सुखसिन्धु भगवान, हरि पूज्य गुणवान;
मौनधारी नरनारी. नित० ॥ ६ ॥

कीर्ति 'कवीन्द्र' गावे, धन जन मौन भावे;
आतम परमातम पदधारी. नित० ॥ ६ ॥

ज्ञानपंचमी सज्झाय

(तर्ज– आपां चालो ए साहेल्यां)

आई ज्ञान पंचमी भावे ज्ञान आराधीयें रे;
सुव्रत वुद्धि साधन दावे. तन मन साधीये रे. ॥ टेर ॥

जाणो ज्ञान हिया की आंख्यां, शिवपुर जावणरी ये पांख्यां;
आवें ज्ञान भावना राख्यां. उद्यम कीजिये रे. आई० ॥ १ ॥

पहले ज्ञान किरिया है पाछे, पहले ज्ञान दया है पाछे;
जाणो ज्ञान सहित गुण आछे. ज्ञान उपावियें रे. आई० ॥२॥

आतम को गुण ज्ञान वडो है सबसुं आगे ज्ञान खड़ो है;
अमृतरस रो ओइ घड़ो है. ज्ञान रस पीजिये रे. आई० ॥३॥

मतिश्रुत अवधि अरु मनपरजा. केवलज्ञान का उंचा दरजा;
ज्ञान से मिटे करम का करजा. विनयें पाइयें रे. आई० ॥४॥

सूरज बादल सुं छिप जावे, चाले जोर हवा खुल जावे;
त्यों ही आतम ज्ञान उपावे, जोर लगाइयें रे. आई० ॥५॥

जो कोई पढ़सी गुणसी आप, पडसी ज्ञान परम गुण छाप,
मिट सी भव भवरा संताप, फरक नहीं जाणिये रे० आई० ॥६॥

पढतों गुणतों कों दे साथ, ज्ञान के दान मे ऊचो हाथ,
राखें सो होवे जगनाथ, भक्ति कर भावियें रे- आई० ॥६॥
ज्ञानें सुखसागर भगवान, ज्ञाने जिन हरि पूज्य प्रधान,
ज्ञाने 'कवीन्द्र' कीरति गान, आतम गुण गाइये रे आई० ॥८॥

मयणासुन्दरी सज्झाय

(तर्ज—आछे लाल)

सुनलो मेरे तात, विनयभरी मेरी बात,
आछे लाल सुख दुःख कर्माधीन है जी ॥टेर॥
झूठा मान गुमान, करते नर अज्ञान,
आछे लाल ज्ञानी जन करते नहीजी सुन० ॥१॥
ओर निमित्त प्रबंध, कर्म लिखा सम्बन्ध,
आछे लाल होता है मानू सदाजी. सुन० ॥ २ ॥
मयणा के ये बोल, भाव भरे अनमोल,
आछे लाल राजा मन भाये नहींजी सुन० ॥ ३ ॥
छोटे मुह बडी बात, करती है दिन रात,
आछे लाल कौन दिया सुख भोगतीजी छोटे० ॥ ४ ॥
क्रोध करे प्रजापाल, चेहरा कर विकराल,
आछे लाल घोर घमडी उच्चरेजी. छोटे० ॥ ५ ॥
मेरी कृपा निःशक, कर दू राजा रक,
आछे लाल तू यहु बोली होगईजी छोटे० ॥ ६ ॥
करमे कोढी योग किये करम तू भोग,
आछे लाल दोष नही मेरा यहाजी छोटे० ॥ ७ ॥
मयणा धर मन धीर, बोली जो तकदीर,
आछे लाल मीन मेख क्या देखनाजी सुन० ॥ ८ ॥
पकडा कोढी हाथ, धार धरम का साथ,
आछे लाल हाहाकारी हो गईजी. सुन० ॥ ९ ॥

गुरु-गम नव-पद जाप, करते मिट गया पाप;
आछे लाल रोग रहा नहीं देहमेंजी. सुन० ॥ १० ॥
पाये मंगलमाल, मयणा अरु श्रीपाल;
आछे लाल 'हरि कवीन्द्र' यश गा रहेजी. सुन० ॥११॥

श्रीवीर का सिद्धान्त

(तर्ज–बोल वन्दे मातरम्)

माल खाना मोक्ष जाता, वीरका सिद्धान्त है;
सत्य शिव सुन्दर सनातन, वीर का सिद्धान्त है. ॥ टेर ॥
कायरों के भाव कायरता, भरे रहते सदा;
वे समज सकते कहो, क्या वीर का सिद्धान्त है. ॥ १ ॥
भोगते है भोग किन्तु भाव में निर्लेप हो;
तो उन्हें योगी बनाना, वीर का सिद्धान्त है ॥ २ ॥
भोग में रहते भरत चक्री प्रमुख ज्ञानी हुए;
भव्य भावों में सुनाता, वीर का सिद्धान्त है ॥ ३ ॥
स्थूलभद्र महामुनि थे भोग के घरमें रहे;
पर महायोगी हुए यह, वीर का सिद्धान्त है ॥ ४ ॥
त्याग इच्छा का यहां जिस, त्याग में रहता नहीं;
मूल है भवरोग का यह, वीर का सिद्धान्त है ॥ ५ ॥
भोगियों के भेख में भी, सिद्ध होते है सही;
सिद्ध पनरा भेद होना, वीर का सिद्धान्त है. ॥ ६ ॥
स्याद्वादी वस्तु में, व्यवहार निश्चय मार्ग है;
शुद्धतम संस्कार करता, वीरका सिद्धान्त है. ॥ ७ ॥
'हरि कवीन्द्रों' के अगोचर, भाव है जो विश्व में;
उनको विशद समझा रहा, श्री वीरका सिद्धान्त है. ॥ ८ ॥

तेरा-रूप अमर है

(तर्ज—आशावरी)

आतम ! तेरा रूप अमर है ।
पावन परमातम पद तेरा, शाश्वत सुखमय घर है,
आतम ! तेरा रूप अमर है ॥ टेर ॥
कर सर्वस्व समर्पण निजका, निजका तू ही वर हैं ।
करम भरम वश भोले भूला,
तू तो ज्योतिर्धर है. आतम० ॥ १ ॥
जिनशासन निज शासन तेरा, तू तो भाव सभर है ।
गुमराही मत हो हे ज्ञानी !
तू तों अजर अमर है । आतम० ॥ २ ॥
मन वच काया जड़ है-तू तो-इनसे अरे उपर है ।
सत्य और शिव सुन्दर तू है,
तू प्रभु परमेश्वर है । आतम० ॥ ३ ॥
शुद्धदेव गुरु पद परमातम, तू ही सुखसागर है ।
तू भगवान है एक अनन्ता,
तू ही पर से पर है । आतम० ॥ ४ ॥
जिन हरिपूज्य "कवीन्द्र" गीत तू, महामहिम पद धर है।
विश्वशान्तिका स्वामी नामी, तुझको किसका डर है ।
आतम ! तेरा रूप अमर है ॥ ५ ॥

स्वारथ की सगाई

(तर्ज—गजल)

किये सम्बन्ध है मैंने, अनेकों से यहाँ उनमें ।
हुआ अनुभव यही मुझको, सभी स्वारथ के साथी है ॥टेर॥

उसी के हेतु हंसते हैं, उसी के हेतु रोते हैं।
सुनो हंसने व रोने में, सभी स्वारथ के साथी हैं ॥१॥

जहाँ तक काम होता है, वहाँ तक नाम लेते हैं।
न होवे काम तो दुश्मन, सभी स्वारथ के साथी हैं. ॥२॥

गधे को बाप कहते हैं, अगरचे काम हो अपना।
उठाते फिर वही जूता, सभी स्वारथ के साथी हैं. ॥३॥

न होगा देह में चेतन, न होगा सांस जो आता।
निकालो जल्दी यों कहते, सभी स्वारथ के साथी हैं. ॥४॥

न रखते एक भी गहना, न निकलेंगे तो काटेंगे.
चितामें फूंक देते फिर, सभी स्वारथ के साथी हैं ॥५॥

कल करेंगे कल करेंगे

(तर्ज नगरी नगरी)

उपदेशक पद

काल काल क्यों करता है रे, काल तुझे खा जायेगा,
बीत गया गर काल बावरें. बीता काल न आयेगा. ॥टेर॥

बचपन बीता जोबन बीता, बुढ़ापा घिर आयेगा।
काम न तब तुझसे कुछ होगा,
फिर बैठा पछतायेगा. काल० १

समय चूक की हूक हृदय में, हरदम लगती जायेगी।
हरे भरे ओ खड़े खेत को,
चिड़ियां तो चुग जायेगी. काल० २

रोले धोले तूं पर कोई तेरे साथ न आयेगा।
बंधी मुठी आया था तूं,
हाथ पसारे जायेगा काल० ३

चेत अचेत न हो हे चेतन, अपना खेत बचा लेना।
जीवनधन सुखसागर हो,
भगवान परमपद पा लेना काल० ४

काल लब्धि परिपाक हुए जन सुमनस खील जाते हैं।
"हरि कवीन्द्र" जन कालजीत का
गीत निरन्तर गाते हैं काल० ५

घटना

(अन्तिम कृति)

मत रहो वेखबर दुनिया में, घटनायें घटती जाती हैं,
जीवन की राहें बदल रही घनघोर घटायें आती हैं ॥टेर॥

बेटा न बाप को बाप कहे तुम चाचा बनना चाह रहे,
यह चाह तुम्हारी झूठी है, घटनाओं को तुम भूल रहे ॥१॥

तुम भूल भले ही जाओ पर, घटनायें भूल न जायेगी,
देखो जीवन सुख में दुःख की, घड़ियां घटनायें लायेगी ॥२॥

मजबूत बनो, मजबूत बनो, तुम महावीर के बच्चे हो,
सोचो झूठे हो या सच्चे हो, तुम पक्के हो या कच्चे हो ॥३॥

कच्चों को कोई स्थान नहीं, घटनायें तुम्हें कुचल देगी,
कुचले जाना है पाप सखे! घटनायें ताप बढ़ादेगी ॥४॥

उठो उठो आलस मोड़ो फिर शक्ति हीनता को छोड़ो,
दौड़ो दौड़ो घटनाओं से, जीवन वेड़ी बधन तोड़ो ॥५॥

वीरों की दासी घटनायें, तुम वीरों के भी वीर बनो,
घटनाओं के निर्माता हो, निज भाग्य विधाता आप बनो ॥६॥

मृत्यु भी उनसे डर जावें, मुक्ति चरणों मे आ जावे,
ये सुमन विकासी घटनायें, है खबरदार वे पा जाये ॥७॥

चिन्तन कणिका

भोले सोचो विचारो बातें ज्ञान की,
वृत्ति तजो अभिमान की ॥टेर॥
ज्ञानी के घर की बातें अजायब,
सुन लो जमीन आसमान की. भोले० १
फिरें अज्ञानी डार-डार ज्ञानी,
खबरें रखें पान-पान की. भोले० २
लोक अलोक की बातें बतावें,
बलिहारी ज्ञानी ज्ञान की. भोले० ३
झूंठे जगत की झूंठी है माया,
झूंठी इच्छा मान-पान की. भोले० ४
अज्ञान से ही हैं कर्म बंधते,
वृत्ति जो दुःख निदान की. भोले० ५
सुख दुःख में सम रहते हैं ज्ञानी,
यह भावना है भगवान की. भोले० ६
"हरि कवीन्द्र" गुरु ज्ञानी की सेवा,
मेवा मिले आन-बान की. भोले० ७

गुरु गुण

(तर्ज—प्रभुपूजा करवा जइये)

सुण मनवा गुरु गुण गाना, गुरु गुण में ही रम जाना;
खूब खजाना. अंतर धन का खुल जायगा. सुण० ॥ १ ॥
जो तुं है गुरुका बन्दा, तो रहे नहीं दुःख द्वन्दा;
सूरज चंदा, सम तू स्वयं बन जायगा. सुण० ॥ २ ॥
गुरु ज्ञान बिना तूं अन्धा, करता है उंधा धन्धा;
करम निबंधा, खाली तूं गोता खायगा. सुण० ॥ ३ ॥
लोहा सुवरन बन जावे, पारस परसंग में आवे;

गुरु वनजावे, जो तू गुरु संग पायगा सुण० ॥ ४ ॥
"हरि कवीन्द्र" का है कहना, गुरु सेवा में चित्त देना,
हित सुन लेना, भवपार तू हो जायगा सुण० ॥ ५ ॥

वीरजन्म वधाई गीत

(तर्ज-बन ३ आये सुघर नरनार)

जय जय आजे वधाई जयकार,
पुत्र जनम महाराज के जय० ॥टेर॥
क्षत्रियकुड में मगलमाला आनन्द आनन्द सार।
पुत्र जनम महाराज के जय० १
धन घडी सुख नरको मे भी छाया, होते पावन अवतार।
पुत्र जनम महाराज के जय० २
प्रसूतिकर्म करें दिशा कुमारिया, भक्ति हृदय में धार।
पुत्र जनम महाराज के जय० ३
मेरु शिखरपर जन्म महोत्सव, इन्द्रादि करते उदार।
पुत्र जनम महाराज के. जय० ४
चेत सुदी तेरस दिन उत्तम, गावे "कवीन्द्र" सुखकार।
पुत्र जनम महाराज के जय० ५

झंडा वंदन

झंडा ऊँचा रहे हमारा, झंडा यह प्राणों से प्यारा,
इस में गौरव भरा हमारा झंडा० ॥ टेर ॥
परमेष्ठि गुण रंग भरा है, झंडे से जीवन सुधरा है।
पचरगा यह झंडा प्यारा झंडा० १
महावीर की ताकत इस में, गुरु गौतम की लब्धि इस में।
झंडे से हो जय-जयकारा. झंडा० २

गुरुदेवोंने इसे बताया, जैन संघ ने इसे उठाया।
झंडा है आदर्श हमारा. झंडा० ३

इस झंडे में रही अहिंसा, दूर करेंगे इससे हिंसा।
इस में बहती जीवनधारा. झंडा० ४

इस झंडे में सत्य प्रतिष्ठा, ब्रह्मचर्य की पावन निष्ठा।
इससे होगा पुण्य-प्रचारा. झंडा० ५

इस झंडे में ज्ञान उजेरा उससे होगा दूर अन्धेरा।
चमकेगा अब सदा सितारा. झंडा० ६

इस झंडे में विशद उमंगे, सुख सागर की सुखद तरंगे।
निर्भय निश्चय शुभ अविकारा. झंडा० ७

निज जीवन गुण उद्भासन में हरि पूज्येश्वर जिन शासन में।
झंडा अनुपम उच्च हमारा. झंडा० ८

स्वयं सेवकाई सिखलाता, झंडा उन्नतपथ दिखलाता।
नित्य "कवीन्द्र" गावे जयकारा. झंडा० ९

गुरुदेव प्रार्थना

(तर्ज—झंडा ऊंचा)

जिन कवीन्द्रसूरीश्वर आओ,
हम सबका दुःख दर्द मिटाओ० ॥टेर॥

दिशि विदिशि अन्धकार छाया, प्रकाश करो हे गुरुवर राया;
दर्शन दे के काज सुधारो. जिन० १

कहाँ जावें हम आके बतावो, शान्तिसुधावृष्टि वरसावो;
भक्तजनों का करो उद्धारो. जिन० २

आश लेके हम आये द्वारे, पूर्ति करदो हमरी सारे;
'दिव्य' करे अरदास विचारो. जिन० ३